R.N.I.No.-CHHHIN16015/2014/59925 ISSN 2456-2130 Bastar Paati

सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित त्रैमासिक

संपादकीय कार्यालयः–

'बस्तर पाति'

सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,
जगदलपुर, जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001
मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति

जल्दी ही इंटरनेट पर–www.paati.bastar.com

•मूल्य पच्चीस रूपये मात्र•

अंक–17+18+19 जून 18 –फरवरी 2019

प्रकाशक एवं संपादक
सनत कुमार जैन
सह संपादक
श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस'
महेन्द्र कुमार जैन
शब्दांकन
सनत जैन
मुख पृष्ठ
श्री नरसिंह महांती

सहयोग राशि–साधारण अंकः पच्चीस रूपये एकवर्षीयः एक सौ रूपये मात्र, पंचवर्षीयः पांच सौ रूपये मात्र, संस्थाओं एवं ग्रंथालयों के लिएः एक हजार रूपये मात्र। सारे भुगतान मनीआर्डर व ड्राफ्ट ***सनत कुमार जैन*** के नाम पर संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजें या स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के खाता क्रमांक **10456297588** में भी बैंक कमीशन 50 रूपये जोड़कर सीधे जमा कर सकते हैं। **अन्य किसी को भी सहयोग राशि न देवें।**

सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपनी रचनाएं कृतिदेव 14 नंबर फोण्ट में एवं एक्सेल, वर्ड या पेजमेकर में ईमेल से ही भेजने का कष्ट करें जिससे हमारे और आपके समय एवं पैसों की बचत हो। रचना में अपनी फोटो, पूरा पता, मोबाइल नंबर एवं ईमेल आईडी अवश्य लिखें। के प्रत्येक पेज में नाम एवं पता भी लिखें।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से बस्तर पाति, संपादक मंडल या संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। रचनाकारों द्वारा मौलिकता संबंधी लिखित/मौखिक वचन दिया गया है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक। समस्त विवाद जगदलपुर न्यायालय के अंतर्गत।

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक, स्वामी सनत कुमार जैन द्वारा सन्मति प्रिन्टर्स, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर से मुद्रित एवं जगदलपुर के लिए प्रकाशित

मार्क्स एवं गांधी बनाम मार्क्सवाद एवं गांधीवाद
1–परिचय/7
2–गांधी जी और मशीन/10
3–विचार मंथन/13
4–सिद्धांत और व्यवहार/17
5–कुछ सवाल स्वयं से/20
6–आज का सच ?/21
7–मानव बनाम प्रकृति /23
8–विस्थापन /25
9–उम्मीद एक नये उजाले की
10–रूकावट के लिए खेद है –भारत में मार्क्सवाद/28
11–परिदृश्य/30
12–चंद्रशेखर आजाद, सूर्य सेन एवं अन्य क्रांतिकारी/32
13–नेहरू एवं मार्क्सवाद/35
14–भारत में मार्क्सवादी पार्टी : एक संक्षिप्त नजर/36
15–पी.सी. जोशी एवं जय प्रकाश नारायण/38
16–गांधीजी, गांधीवाद और गांधीवादी –हिंसा बनाम अहिंसा/40
17–आज के गांधीवादी बनाम मार्क्सवादी/46
18–गांधी और मार्क्सःएक नजर/48
विवरण/1
पाठकों से रूबरू/2
पाठकों की चौपाल/5
लघुकथा/दिनेश कुमार छाजेड़/6
लघुकथा/डॉ.शैलचंद्रा/6
क्षणिकाएं/डॉ.जयसिंह अलवरी/6/9
लघुकथा/महेश राजा/13
लघुकथा/महेश राजा/21
काव्य/रोजलीन/22
लघुकथा/अमृता जोशी/25
लघुकथा/अमृता जोशी/27
लघुकथा/अमृता जोशी/28
लघुकथा/मदन देवड़ा/30
काव्य/मदन देवड़ा/31
लघुकथा/महेश राजा/38
काव्य/विजयवर्द्धन/46
काव्य/प्रा.डॉ.प्रकाश वि. जीवने/48
काव्य/जाल अंसारी/50
काव्य/रमेश जैन राही/50
लघुकथाएं/सीताराम गुप्ता/51
कहानी/नई रैक/राम नगीना मौर्य/52
काव्य/डॉ कौशलेन्द्र/56
कहानी/आत्मविश्वास/अंकुश्री/57
काव्य/डॉ. के.के. अग्रवाल/59
नक्कारखाने की तूती/60

लघुकथा

बेटा बहू

''रात भर बेचारी माँ तडपती रही। कितना भयंकर दर्द था। हे भगवान जल्दी ठीक कर दे मेरी माँ को!'' देवेश ने सुलभा से कहा।

''तुम भी तो रात भर नहीं सोये। पूरी रात माँ की सेवा में लगे रहे। माँ तो तीन बजे सो भी गई थी पर तुम नहीं सोये। जब माँ सोकर उठी तब ही तुम्हें बोल देती सोने को। उनके पीछे तुम्हारी तबियत न बिगड़ जाये?'' सुलभा तीक्ष्णता पर आते हुए बोली।

''माँ है वो माँ! यदि माँ ने मुझसे सोने नहीं कहा, इसका मतलब उनके दर्द की तीव्रता को समझो, कितना भयंकर दर्द रहा होगा, कैसे सहन किया मेरी माँ ने।'' कहकर देवेश की आंख की कोरों से आंसू टपक पड़े।

ट्रेन में बैठी सुलभा सोच रही थी आज वो अपनी मां की मौत के बाद मायके जा रही थी।

''अब जाने से तो मिटटी भी नहीं मिलेगी, चलना है तो बोलो?'' देवेश ने कहा। सुलभा कुछ बोलती की माँ बोल उठी,– ''सीधे तेरहवीं में ही जाना। तेरह दिन कहाँ और कैसे रहोगी?''

''वो मरने वाली मेरी माँ है। मिटटी में मिल भी जाएगी तो भी उसके शरीर की गंध बाकी होगी घर में, उसकी ममता मेरी राह देख रही होगी। मैं आज और अभी ही जाऊंगी।'' और वह ट्रेन में बैठी थी।

सनत कुमार जैन

बीते समय का पुनरावलोकन

कुछ समय पूर्व राष्ट्रसंत श्री तरूण सागर ने कहा था कि महावीर को अब मंदिर से निकाल कर चौक चौराहों पर लाने की जरूरत है। इसके बाद बहुत से तथाकथित विद्वानों ने उनका विरोध प्रदर्शन किया कि उन्होंने भगवान के बारे मे गलत कहा है। क्या उन्होंने गलत कहा था ? या हमने गलत समझा था ? क्या उन्होंने महावीर को मानने वालों के समक्ष समीचीन प्रश्न नहीं रखा था ? क्या हमें अपने वर्तमान का विश्लेषण नहीं करना चाहिए ?

आइये जरा कुछ विस्तार से समझ कर आत्मसात करने का प्रयास करते हैं। महावीर का मतलब महावीर है या फिर महावीर का दिखाया मार्ग ?, उनका सीखायी जीवन शैली ? या फिर सिर्फ महावीर की मूरत ? आज महावीर को मानने वाले सिर्फ महावीर को मानते हैं पर महावीर की नहीं मानते। (यह राष्ट्रसंत तरूण सागर ने कहा था।) हम महावीर के ज्ञान को तभी सार्थक मानेंगे जब उनके मार्ग पर चलेंगे न कि उनकी मूरत बनाकर उनकी पूजा करने से!

इस देश की मिट्टी में ही शायद यही गुण है। रास्ता बताने वाला पूजा जाता है पर लोग रास्ते पर नहीं चलते। और शायद इसलिए ही देवताओं को समय–समय पर आकर याद दिलाने की जरूरत महसूस हुई है। इस चक्कर में देवताओं की संख्या भी बढ़ती गई। और आज भी बढ़ती ही जा रही है।

मार्क्स अपने देश के लिए एक वरदान था। उसने अपने देश में व्याप्त कामगारों की दयनीय स्थिति को बदलने के लिए अपने समाज और लोगों का अध्ययन किया। इसके बाद अपने विचारों का निष्कर्ष लिखा। उसने अपने समाज के द्वारा औद्योगिक मजदूरों के शोषण को दूर करने के लिए बिगुल फूंका। वहां उस वक्त मानव की मशीन से तुलना कर उनसे उसी तरह के आउटपुट की उम्मीद की जाती थी। न तो उनके पास रहने के लिए घर थे न ही ढंग का वेतन जिससे वे अपना पोषण कर सकें। उनकी इस दयनीय अवस्था के लिए भगवान का अवतार बनकर मार्क्स आये और उनकी क्रांति ने हद तक उनकी स्थिति को सुधार कर दिया।

मजदूरों और कामगारों के जीवन में व्यापक सुधार से सारी दुनिया मार्क्स के विचारों की ओर आकर्षित हुई। उस वक्त लगभग सारी दुनिया अंग्रेजों की गुलाम थी, इसलिए उनके अखबार थे उनका मीडिया था और उनका परोसा हुआ ही जनता के बीच पहुंचता था। उच्चशिक्षा के लिए विदेश यात्रा करनी पड़ती थी। इसलिए उस वक्त के ज्यादातर शिक्षित, उनके पोषित विचारों से प्रभावित होते थे। मार्क्स के मुख्यधारा में आते ही उनके विचारों को पूरे विश्व के हर देश में हाथों हाथ लिया गया। उनके आंदोलन के बाद हर कोई वो जादू की छड़ी अपने लोगों के लिए लाना चाहता था। जिसके घूमते ही सारे गरीब, बेगार, मजदूर एकदम से सुखी सम्पन्न हो जायें।

पर क्या ये सब इतना आसान था ? समुंदर के किनारे बसने वाला मछली और नारीयल का सेवन करता है। मैदानों में रहने वाला चावल खाना पसंद करता है और पहाड़ों पर रहने वाला जानवरों पर निर्भर होता है। क्या ये सब उस स्थान विशेष के मौसम के अनुसार अपनी जीवन शैली विकसित नहीं करते हैं ? उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप जीवनचर्या और संस्कृति विकसित नहीं होती है ? तो फिर भारत में मार्क्स के विचारों को हू–ब–हू कैसे रोपा जा सकता था/है ? हजारों वर्ष पुरानी सांस्कृतिक विरासत लेकर चलने वाले देश में एकाएक उस बरगद / पीपल को उखाड़कर एक नया पौधा कैसे रोपा जा सकता है ? और फिर ये कौन ध्यान देगा कि उस पौधे के लिए यहां की आबोहवा अनुकूल है या नहीं ?

लगातार कोशिश जारी है, खाद पानी भी दिया जा रहा है पर वो पौधा, पौधा ही बना हुआ है या यूं कहें कि अविकसित युवा! ऐसा क्यों है क्या इस पर विचार आवश्यक नहीं है ?

विश्व बंधुत्व की बातें जो आजकल जुमले के रूप में की जा रही हैं ये बातें न जाने कब से सच्चाई के रूप में इस देश की मिट्टी, संस्कार और प्रायः सभी धर्मो में हैं। यहां का हर निवासी विश्व मंगल की प्रार्थना किये बिना अपनी नित्य पूजा को पूर्ण नहीं समझता है। इंसानों के मंगल के अलावा जल, वायु, अग्नि, मृदा और न जानने वाली चीजों का मंगल चाहता है। इस नित्य भावना के अलावा उसके दरवाजे से बहुत कम लोग ही खाली हाथ जाते हैं। वह यथासंभव कुछ न कुछ देता ही है। (यहां कुछ कुंठित इस बात को भिखारी समस्या से जोड़ सकते हैं। जबकि भीख मांगना भी एक बहुत ही साहस का काम है क्योंकि भीख मांगते वक्त अपना जमीर एक हाथ में रखकर दिखाना होता है।) हमारा देश संतृप्त मनोवृत्ति के लोगों से भरा हुआ है। यहां एक व्यक्ति जिसे ट्रेन में यात्रा करना होता है तो वह रिजर्वेशन की खिड़की से वेटिंग का टिकट लाकर भी खुश रहता है कि चलो रिजर्वेशन वाली बोगी में घुसने तो मिल ही जायेगा। यदि उसे टीटी सीट नहीं देता है और उसे जनरल में भेज देता है तो वह ये सोच कर संतोष कर लेता है कि चलो समय से अपने गंतव्य पहुंच तो जाऊंगा। कहने का मतलब ये है कि इस धरती की मिट्टी और उस देश की मिट्टी जहां मार्क्स ने अपनी देशभक्ति निभाई दोनों में अंतर है।

मार्क्स की तरह सोचने वाले सिर्फ उद्योग और नौकरी को ही अपना एजेण्डा बनाये और बड़ी चालाकी से मजदूरों और किसानों को ढाल बना कर खुद को सर्वसम्पन्न बनाकर

शासक बना लिया। खुद को उनका भगवान घोषित कर लिया। किसानी को एक ओर उन्होंने इतना ज्यादा दयनीय बना दिया या कि लोग मजदूरी करना पसंद करने लगे। इस कारण इस कृषि प्रधान देश में जमीन, पानी और मौसम की अनुकूलता के बावजूद अचानक बेरोजगारों की भीड़ आ गई। कृषिपुत्रों को खेत की जमीन काटने लगी। उन्हें मजदूरी करना ज्यादा अच्छा लगने लगा।

शिक्षा को इस तरह प्रचारित किया कि वो रोजगार का पर्याय हो गई वो भी सिर्फ सरकारी नौकरी। जिस तरह पर्यावरण चक्र में हर जीव से लेकर अजीव तक का महत्व होता है और किसी एक का उस चक्र से हट जाना पूरे पर्यावरण को प्रभावित कर देता है ठीक उसी तरह शिक्षा ने समस्त रोजगारों को बेकार साबित कर सरकारी नौकरी को ही रोजगार माना और साबित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

बढ़ई, लोहार, राजमिस्त्री, कुम्हार जैसे अनेकों काम को छोटा साबित किया गया और समाज का चक्र ध्वस्त होने की स्थिति में आ गया है। पंद्रह–अठारह साल पढ़ाई करके भी एक युवा पांच रूपये कमाने के लायक नहीं रह जाता है। सरकारी नौकरी मिली तो ठीक वरना वही पुराने ढर्रे से और अनमना होकर किसी भी काम को करता है। समझ लीजिए घिसटता हुआ।

इन तमाम उदाहरणों की यहां क्या आवश्यकता है आप सोच रहे होंगे। है आवश्यकता, तब तो कलम घसीटी जा रही है। जिस वर्ग भेद के विरूद्ध इस देश में मार्क्सवाद को थोपा गया उसने ही कई तरह का वर्ग भेद पैदा कर दिया। अमीर गरीब की खाई को सिर्फ, नौकरी देने वाले उद्योगपतियों को गाली देने और फिर वहीं जाकर नौकरी करने तक रह गया है। जिन मजदूरों और किसानों के लिए बेनर, पोस्टर और किताबें रंगी गईं वे सब उस वक्त बेमकसद रह गईं जब उन पढ़े लिखे शोषकों ने अपनी आय में वृद्धि की तुलना में उन किसानों–मजदूरों की आय को अतुलनीय बना कर रख दिया है। कहां से तुलना हो एक ओर लाखों में आय है तो दूसरी ओर बमुश्किल हजारों में।

कुल मिला कर कहना यह है कि एक सच्चे व्यक्ति मार्क्स के जीवन दर्शन को इस देश में कुछ ऐसा घोलघाल कर पिलाने की कोशिश की गई कि एक नये तरह के ब्राहमणवाद (उन्हीं का दिया हुआ शब्द जिसका शब्दार्थ और तात्पर्य होता है ब्राहमण ही दलितों का शोषक होता है और ब्राहमणवाद परिभाषा का निहितार्थ एक ज्ञानवान तबके का अज्ञानियों के शोषण का काम।) ने सीधे युवा रूप में जन्म ले लिया। अब देशी मार्क्स वाहक ही शोषण के पर्याय बन गये। सिर्फ और सिर्फ घृणा और अलगाववाद को पोषा, नाम था वर्गभेद मिटाना!

मार्क्स अपनी जमीन का अपनी मातृभूमि का नायक था, है, और रहेगा। पर क्या हमारे यहां के उनके अनुयायियों ने उनके साथ न्याय किया या अन्याय ? मार्क्स की सोच को हमारे यहां थोपने की जल्दी मचाने से पहले उसके लिए खाका खींचा जाता तब बात बनती। पर उस जल्दी के पीछे सिर्फ सत्ता का आचमन ही महसूस होता है। मार्क्स की सफल क्रांति की फोटो को सपनों की तरह बेचने का काम!

महात्मा गांधी ने अपने जीवन के अनुभवों से एक शानदार घृत मथा था –गांधीवाद! वह घृत था अपनी धरती और संस्कृति को सहेजते हुए विकास और सामाजिक समरसता। चूंकि मार्क्स की धरती में सामाजिक संस्कार अलग थे और भारत की धरती की तरह तो कदापि नहीं। इसलिए गांधी दर्शन पूर्णतः इस धरती के विकास के अनुकूल था। जिसमें वो सब कुछ था जिसके लिए ये धरती तैयार थी। संस्कृति संस्कार और नैतिकता के साथ मानवीयता! पर्यावरण और जीवन चक्र को सहेजने का वादा! समाज के विकास के लिए प्रत्येक तत्व को महत्व देते हुए आगे बढ़ना। नैतिक बल सत्य और अहिंसा को लेकर एक वर्ग रहित समाज बनाना। क्या ये सब काल्पनिक था ? बल्कि आसान और विश्वसनीय था। क्यों ? क्योंकि इस देश का इतिहास गवाह है कि इन्हीं के बल पर समय–समय पर समाज का दीपक टिमटिमाकर फिर से प्रकाशवान हुआ है।

खैर! ये बातें शायद इस युग में बेवकूफी मानी जाती हैं।

पर क्या आज हमारे गांव स्वालंबी हैं ? उनकी जरूरतें वहीं गांव में पूरी हो पा रही हैं ? गांव के लोग अब एक दूसरे पर निर्भर होकर क्या एक दूसरे के लिए सौहाद्र रखते हैं ? एक दूसरे पर निर्भरता, एक दूसरे के लिए निकटता नहीं लाती है ? स्वप्रेरणा जागृत करने से बढ़कर कोई तरीका हो सकता है दुनिया में जिससे लोग एक दूसरे के अलावा वृहत समाज के लिए चिन्तित हों ? आज गांव के असंगठित कर्मियों के लिए कौन आवाज उठा रहा है ? कौन है जो उन पर ध्यान दे रहा है ?

गांधीवाद या गांधी दर्शन वो दर्शन है जो इस मिट्टी पर जन्मने वाले व्यक्ति ने इस मिट्टी के लिए विचार करने के बाद हल के रूप में निकाला है। वो जानते थे कि एक गरीब के लिए कोई नहीं लड़ेगा इसलिए वो गांव को ही इतना समृद्ध बनाना चाहते थे कि किसी को गांव से बाहर जाना ही न पड़े। पर हुआ क्या ? गांव के लोग शहरों में मजदूर बन कर जीने को मजबूर है और मजेदार बात यह है कि वे खुद इसके लिए लालायित हैं। ऐसा ब्रेनवाश कर दिया है दो पीढ़ियों का कि अब वापसी ही मुश्किल लगती है। खुद ही लोग खुद को कुंओं में ढकेलने को उतावले हो गये हैं। कुछ समझदार हैं तो वे

सोच में पड़कर मजबूर है क्योंकि पूरा चक्र ही ध्वस्त हो गया है। गांव में खेत की खड़ी फसल काटने के लिए मजदूर नहीं हैं और शहर के हर चौक में खाली रिक्शों की फौज खिचड़ी दाढ़ी में, पिचके पेट के साथ खड़ी है।

औद्योगिकीकरण और उसमें छाया देशी मार्क्सवाद देश के युवाओं को आकर्षित करता है क्योंकि सूटबूट के सपनों में नोटों की थैली बगैर मेहनत के नजर आती है। जबकि स्थिति उलट है। सरकारी नौकरी में बड़ा संगठन है और वह अपनी मनमर्जी का मालिक है। वहां लगातार हड़ताल के बाद भी पूरी तनखा और फिर बढ़ी हुई तनखा पिछले वर्ष से मिलती है।

क्या ये संभव है कि सभी शिक्षितों को नौकरी दे दी जाये ? जरा विचार करें।

दुनिया में मार्क्सवाद की उत्पति और उसके औचित्य आवश्यकता को जानना जरूरी है। और उसके विभिन्न पहलुओं को जानना इसलिए भी जरूरी हो जाता है कि हमारे देश की राजनीति इसी मार्क्स के नाम के इर्द गिर्द घूमती है। हर नेता उसका नाम जपता है। हर नेता समाजवाद की बात करता है। हर नेता गरीब की बात करता है। हमारे देशी मार्क्सवाद में गरीब की चर्चा एक आवश्यक विषय है। यहां इस बात की तसदीक जरूरी है कि वास्तविक धरातल पर क्या कभी गरीब के लिए कुछ ठोस कार्य किया गया है ? जिससे उनकी गरीबी वास्तव में दूर हुई है ? बल्कि गरीबी के आंकड़े बढ़ते ही जा रहे हैं। क्यों ऐसा है कहां चूक हुई है ? वैसे भी समय–समय पर वर्तमान और भूतकाल की समीक्षा जरूरी है तब ही तो भविष्य की योजनाएं बनती हैं।

इस देश में धर्म के अधीन जीने वाले समाज के लिए उस तरह की योजनाओं की आश्यकता है। भले ही हमें समाज दकियानूसी घोषित करता रहे। समाज का बड़ा वर्ग बल्कि लगभग पूरा ही अपने धर्म के प्रति, संस्कार के प्रति डूबा हुआ है इसलिए वह उसे चोट पहुंचा नहीं सकता है। यहां खेती, वृक्ष, नदी, तालाब की पूजा से जीवन को ही पूजा बनाकर रखा गया है। इसलिए इन सबको सहेजते हुए उनके विकास की योजनाएं जल्दी और ठोस रूप से सफल होंगी।

भारत देश गांवों में बसता है कहने वाले ये नहीं बताते कि भारत गांवों का समूह है बल्कि उनका मतलब है ग्रामीण जीवन शैली का आदी है वो। गांवों में खेत और अन्न के इर्द–गिर्द जीवन का हर एक पल गुजारने वाले लोगों की जीवनचर्या को जो कि धर्म भी है उनका, कैसे उसे जड़ों से कोई काट पायेगा! भारत को भारत के तरीके से आधुनिक विकास की ओर ले जाना होगा। एक ऐसा संतुलित विकास जिसमें विश्व की आधुनिक जीवन शैली हो और खेत भी हों। ये सपना ठीक महात्मा गांधी जी का है क्योंकि उनके बारीक अध्ययन ने जाना था कि भारतीय संस्कारों से बढ़कर शायद ही कोई संस्कार हो, इसे सहेजने की आवश्यकता है, बनाये रखने और पल्लवित करने की आवश्यकता है। इसलिए उन्होंने ग्राम स्वराज्य और कुटीर उद्योग को बढ़ावा देना चाहा। उन्होंने खादी को प्रतीक के रूप में मेहनत और संस्कार को सहेजने की बात की।

वैसे भी जिस जमीन में हम रह रहे हैं उसकी उर्वरा शक्ति को हम ही समझ सकते हैं। हम ही जान सकते हैं कि क्या उगाया जाय।

चाणक्य नीति में कहा गया है कि व्यक्ति को अपने जीवन में थोड़े–थोड़े वक्त में रूक कर और पीछे मुड़ कर देखना चाहिए कि हम कहां से शुरू हुए और कहां जाना चाहते थे। जिस मार्ग को चुना है वो क्या अनुकूल था! इसलिए किसी भी सिद्धांत को लगातार थोपे रहने की जगह उसका समयोचित अध्ययन और समीक्षा आवश्यक है। भारतीय संस्कार तो इतने पुराने होने के बाद भी समय समय पर संशोधित होते रहे और आज भी लचीले हैं।

गांधी जी की 150वीं जयंति पर उनके विचारों का पुर्नपाठ और उसी वक्त के मार्क्स के विचारों से उनकी तुलना समीचीन है। आज भी हम दोनों को एकसाथ रखकर देश को खींच रहे हैं। दोनों को लेकर चलने की कोशिश की जा रही है। पर हो क्या रहा है हम सब उससे अनछुये नहीं हैं। वर्तमान मांगता है कि दोनों का पुर्नपाठ हो और आवश्यकतानुसार पुर्नस्थापना भी। दोनों के विचारों पर केन्द्रित श्रेष्ठ विश्लेषण इस अंक का प्राण है। वर्तमान अंक का 'बहस' कॉलम मौलिकता से लबरेज **''मार्क्स एवं गांधी बनाम मार्क्सवाद एवं गांधीवाद''** इतिहास का अध्ययन हम सबको दोनों के करीब लेकर जायेगा और चिंतन करने पर मजबूर कर देगा। हम सोचने पर मजबूर हो जायेंगे कि भारत में 'क्यों हुआ, क्या हुआ और क्यों हो रहा है।' हम मोटी मोटी पुस्तकों को पढ़ नहीं पाते हैं पर उसकी समीक्षा हमें सबकुछ साररूप में निचोड़ कर सामने रख देती है बिल्कुल विटामिन की गोली की तरह।

तो आइये हम अपने महात्मागांधी युग को आत्मसात कर समझने का प्रयास करें। उस वक्त की परिस्थितियों को जानें कि किन कारणों से आज का समय है। क्योंकि भूतकाल की नींव पर वर्तमान का भवन टिका होता है चाहे वह कंडम स्थिति में हो या फिर शानदार बना हो। वह नींव ही निर्णय लेती है कि भवन अब बना रहे या फिर गिरा दिया जाये। हम भले ही कोशिश में होते हैं कि रंगरोगन और रफूगिरी से सुंदरता बनाये रखें।

वैसे भी इस देश में न जाने कितनी ही सदियों पूर्व बनाये गये भवन आज भी तरोताजा हैं। ***सनत जैन, संपादक***

पाठकों की चौपाल

समस्त सुधि पाठकगण नमस्कार! पाठकों की चौपाल लेखक और पाठक की चौपाल है। जिसमें लेखक और पाठक के बीच का संवाद पत्रिका के माध्यम से होता है। अतः आपसे निवेदन है कि समस्त प्रकार की औपचारिकताओं से दूर आप पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रियायें लिखें। समीक्षा में मात्र प्रशंसा के स्वर न हों बल्कि समालोचना भी हो। सम्पादक केन्द्रित पत्र के स्थान पर रचना केन्द्रित पत्र हमें अपनी पत्रिका मे सुधार हेतु प्रेरित करेंगे और साथ ही साथ सम्बंधित रचनाकार के लिए भी एक उपलब्धि होंगे। आपके द्वारा भेजे गये पत्र में सीधे रचनाओं पर बात होगी तो आपका कीमती समय किसी रचनाकार को अपनी रचनाओं में महत्वपूर्ण बदलाव के लिए प्रेरित कर सकता है। अतः निवेदन है कि आपके पत्र रचनाकार की रचनाओं पर केन्द्रित हों न कि रचनाकार पर केन्द्रित।

सम्पादक महोदय

आपके द्वारा प्रेषित बस्तर पाति पत्रिका का अंक प्राप्त हुआ। बहुत बहुत धन्यवाद एवं आभार। आदिवासी क्षेत्र, संस्कृति एवं साहित्य को समर्पित प्रयास सराहनीय है। निश्चय ही आपकी पत्रिका ने संबंधित रचनाकारों को अपने विचार व्यक्त करने का एक सशक्त मंच प्रदान किया है। आशा है कि रचनाकार अपनी रचनाप्रतिभा एवं सृजन क्षमता से समाज को एक नई दिशा देने में सहायक होंगे जो कि रचनाकार का ध र्म भी है। आपने अपने संपादकीय लेख में 'प्रगतिशील' विषय को लेकर बहुत विस्तार से अपने विचार रखे हैं। विषय है ही बहुत विस्तृत। मैं तो एक सामान्य लेखिका हूं बस सारांश में इतना ही कह सकती हूं कि न तो पुराना सब अच्छा होता है और नया सब बुरा! परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है परन्तु बहते पानी में अपने आप को छोड़ देने की अपेक्षा हममें से प्रत्येक को अपने भीतर झांककर देखने व अपने आप से यह प्रश्न पूछने की आवश्यकता है कि प्रगति के नाम पर हम जो कर रहे हैं क्या वह वास्तविक प्रगति है ?

व्यक्तिगत रूप से विचारों की शुचिता, मानसिक स्वच्छता ही प्रगति का सही आधार हो सकती है। एक परिवार यदि प्रगति के नाम पर, आध ुनिकता के नाम पर अपने आपको समस्त संसाधनों से सुसज्जित तो कर लेता है लेकिन घर में दूसरी बेटी के जन्म लेने पर मातम मनाता है। उसे 'निराशा' नाम देकर पल–पल जीकर मरने के लिए छोड़ देता है तो आप उस परिवार को क्या कहेंगे प्रगतिशील ? ***प्रभा मेहता, 102 रामदेव बाबा अपार्टमेंट, 349/4 बजाज नगर, नागपुर–440010***

आदरणीय प्रभा जी, सादर नमन

धरती पर जो भी पनपता है वह स्वयं ही अपना स्वरूप बदलता जाता है, प्रतिपादित व निर्विवाद सत्य है। पर क्या इतने कम समय में बदल जाता है जितने में इंसान की सोच! प्रकृति परिवर्तन में लगभग स्थायित्व का भी बड़ा महत्व है। जब बहती नदी को कठोर पथरिला मार्ग मिल जाता है तो वह भी वहां सूक्ष्म परिवर्तन ही करती है। ठीक वैसे ही हमारे जीवन में नये को छोड़ कर पुराने को पकड़े रहना, वही स्थायित्व है जो हमारे अनुकूल जीवन के लिए जरूरी है। प्रगति के नाम पर विनाश को ओढ़ लेना पागलपन है। दुनिया में जो अच्छा है उसे पकड़ने की चाहत में विनाश की ओर अग्रसर होते जाते हैं। और अग्रसर होना लाजमी भी है क्योंकि जो अच्छा माना जाता है वो चमकीला है, भड़कीला है और स्वछंद है, तो क्यों भला वो अपनी ओर नहीं खींचेगा।

वर्तमान छद्म प्रगतिशीलता की परिभाषा योजनाबद्ध भारतीय सांस्कृतिक विरासत को विनष्ट करने वाली है। भारतीयता के विरूद्ध दौड़ना प्रगतिशीलता है। हिन्दु संस्कृति के विरूद्ध लिखना, पढ़ना और बोलना प्रगतिशीलता के मायने बना दिये गये हैं। जबकि इस देश में समान रूप से रह रहे अन्य अल्पसंख्यकों को अपनी संस्कृति के संरक्षण के लिए आदम हौव्वा युग में रहने की छूट है। ये कैसा प्रगतिशीलता का पैमाना है ? किसने बनाया है ? कौन पोषित कर रहा है ? एक ओर धर्म के सहारे सुखी जीवन के लिए धर्मविधान बनाये गये हैं लेकिन धर्म के अंतर्गत परिभाषित हैं इसलिए मत मानो चाहे उससे मर ही क्यों न जाओ। अभी एक समाचार पढ़ा कि बच्चों के जन्मदिन पर चाकलेट बांटने पर स्कूलों में प्रतिबंध लगाया जायेगा। उसमें ज्यादातर टिप्पणी करने वाले इस बात का अर्थ ये लगा रहे थे कि ये सब जन्मदिन मनाये जाने वाली संस्कृति पर हमला है। कुछ लोग ईसाई धर्म के विरूद्ध षडयंत्र और हिन्दुधर्म की पक्षधरिता का आरोप लगा रहे थे। क्या ये सही है ? क्या इसी प्रगतिशीलता की आड़ में अपने दांत, शरीर और पेट खराब करना सही है ? ये कैसी प्रगतिशीलता है। स्वप्रेरित नैतिकता का प्रवाह होना सही है या घर के बुजुर्ग को लतियाकर, वृद्धाश्रम में सेवा करना! भारत में प्रगतिशील आंदोलन पश्चिम की नकल था। प्रगतिशीलता इस धरती की हमेशा से ही विशेषता रही है। समाज में जैसे ही रूकाव महसूस हुआ, तुरंत ही एक महापुरूष ने सामने आकर सबकुछ संभाल लिया। समाजसुधार स्वचालित प्रक्रिया के तहत चलती रही है। आयातित संस्कृति और स्थापित संस्कृति के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा की जा रही है। सिर्फ और सिर्फ ये किया जा रहा है प्रगतिशीलता के स्वयंभू नायकों की स्थापना के लिए।

आखिर इन सब से बचायेगा समाज का प्रबुद्ध पाठक ही। वही है जो अपनी मेघा से इन स्वयंभूओं को मिट्टी चखायेगा।***सम्पादक बस्तर पाति***

भाई सनत जी,

बस्तर पाति साहित्यिक मूल्यों की एक अच्छी पत्रिका है। व्यवसायिकता की दौड़ में वैचारिक व साहित्यिक मूल्यों की पत्रिका निकालना एक कठिन कार्य है। इन सबके बावजूद आप लोग जिस कर्मठता, समर्पण व मनोयोग से इसे बराबर प्रकाशित कर रहे हैं, इसके लिए जितना भी साधुवाद दिया जाये वह कम है।

मैं पिछले लम्बे अरसे से देश विदेश घूम रहा था, थोड़ी फुरसत होने पर रचनाएं भेजना आरंभ करूंगा। मेरी बहुत इच्छा है कि कुछ दिनों के लिए पूरा बस्तर घूमा जाये। बहुत समय पूर्व मैं जगदलपुर आया था।

राजेन्द्र पटोरिया, पूर्व संपादक–खनन भारती।

आदरणीय पटेरिया जी, नमस्कार,

पत्रिका प्रकाशन वास्तव में बहुत कठिन कार्य है अगर उसे मन से किया जाये। वर्तमान में बहुत सी पत्रिकाएं सिर्फ एजेण्डा लेखन कर ही हैं जबकि वो जानती हैं कि ये गलत है परन्तु सरकारी धन का फायदा उठाने के लिए लगातार किया जा रहा है। जुगाड़ के सम्मान के लिए ये सब किया जा रहा है। पत्रिका हर महिने निकालना है भले ही कुछ भी कचरा परोसते जाओ। समाज की विचारधारा को प्रभावित करने के लिए, समाज कहीं भी जाये, इस बात से उनको क्या करना है।

वर्तमान में हम किसी काव्यगोष्टी में भाग लेते हैं तब जानकारी मिलती है कि बड़े–बड़े नामधारी लोग क्या लिखते हैं और उनके भीतर क्या है। उनका लेखन कितना जमीन से जुड़ा और मौलिक है इस पर कभी ध्यान दिया है। उन नामधारी लेखकों, संपादकों ने किसी भी सामाजिक समस्या में अपना कितना मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया है, सिर्फ पुराने लेखकों की लिखी बातों की जुगाली, जरा सा हेर फेर करके अपने नाम से प्रकाशित करने के अलावा क्या किया गया है। जो समस्याएं पुराने समय में थीं और उनका हल पुराने ढंग से था, क्या उनको नये संदर्भों में हल करने का चिंतन है ? जुगालीछाप लेखन और भाषण आजकल सफल लेखक की पहचान घोषित कर दिया गया है। इसे ही साहित्य के संविधान में अपरिवर्तित नियम बना दिया गया है बिल्कुल कश्मीर जैसी समस्या की तरह। चूंकि आम लेखक संसाधनविहिन है, प्रगतिशीलता झंडाबरदारों ने अपने एजेण्डासाहित्य को प्रोत्साहन देने के लिए सिर्फ हिन्दी लेखक के मरने की राह देखना पसंद करता है। फिर उसकी रचनाओं में अपना 'वाद' ढूंढ कर अपने खेमे में शामिल करना है या नहीं विचार करता है।

सम्पादक बस्तर पाति

लघुकथाएं

फैसला

फैक्ट्री मैनेजर ने कर्मचरी राकेश को अपने चेम्बर में बुलाया। मैनेजर ने राकेश को कहा,–''सुना है तुम लेख लिखते हो, कविताएं भी मजदूरों की सभा में सुनाते हो। तुम को मालूम है तुम्हारे कारण फैक्ट्री का माहौल बिगड़ रहा है।

तुमको यहां पर काम करने की तनख्वाह मिलती है। फैक्ट्री का माहौल बिगाड़ने का शौक है तो दूसरी नौकरी ढूंढ लो। तुम्हें सोचने के लिए एक सप्ताह का वक्त दिया जाता है।''

राकेश सिर झुका चैम्बर से बाहर निकला। अपने ड्यूटी प्वाइंट पर बैठा–बैठा सोचता रहा। शाम को शीघ्र ही घर लौट आया।

घर पर पहुंचते ही परिवार के सदस्यों के भावों को देखा। बुजुर्ग मां–बाप, कुंवारी दो बहनों की शादी की चिन्ता, बच्चों के भविष्य की रूपरेखा दिमाग पर बनने–बिगड़ने लगी।

आखिरकार उसने मन ही मन एक कड़ा फैसला किया। अपनी तमाम रचनाओं को एक़ किया। उसमें आग लगा दी।

पत्नी आश्चर्यचकित होकर पूछी,–''ये क्या किया ?''

राकेश ने सीधे जवाब दिया,–''एक लेखक को मैंने खत्म कर दिया।''

दिनश कुमार छाजेड़
ब्लॉक 63/395
भारी पानी संयंत्र कॉलोनी
रावतभाटा, जिला–चित्तौड़गढ़
राजस्थान–323307

आवाजें

आज उसके घर से आने वाली सारी आवाजें बंद थी। जब भी वह अपने काम से घर लौटता तो पाता घर में कोई न कोई आवाजें आती ही रहती थीं। कभी बर्तन मांजने की, कभी कपड़े धोने की तो कभी रसोई में खटर–पटर की आवाजें। जो सुधा के अस्तित्व का भान कराते। सुबह से रात तक घर में ऐसे तमाम किस्मों की आवाजों से वह चिर– परिचित था।

कभी दोपहर में वह घर आता तो उसे लगता कि शायद अब घर में कोई आवाजें नहीं आ रही होगी। शायद सुधा दोपहर में आराम कर रही होगी। तब उसे आश्चर्य होता की उस समय सुधा छत पर कपड़े तह करती हुई कपड़ों को फटकारती हुई मिलती।

जब वह रात को बिस्तर पर लेट कर कोई किताब पढ़ता होता तब वह चाहता कि अब उसके घर से आने वाली आवाजें बंद हो जाएं पर उस समय सुधा रसोई में उसके लिए गैस पर बादाम वाला दूध गर्म कर रही होती या उसके दवाई खाने के लिए गर्म पानी कर रही होती।

आज पूरा घर बिल्कुल निःशब्द था। कहीं कोई आवाजें नहीं है। सुधा को गुजरे पूरे पंद्रह दिन हो गए थे। आश्चर्य पिछले पच्चीस सालों से उसने इन आवाजों की कभी क़द्र नहीं की। सुधा उसके लिए एक साधारण स्त्री थी। जो उसके लिए खाना बनाती। उसके कपड़े धोती। उसका ध्यान रखती। बिल्कुल एक सेविका की तरह।

उसे आज महसूस हो रहा था कि सुधा को एक साधारण स्त्री समझना उसकी बहुत बड़ी भूल थी। घर में आने वाली जिन तमाम प्रकार की आवाजों को वह निरर्थक समझता रहा वह तो उसकी अभ्यर्थना थी। उसकी वंदना थी। वह बौखलाया सा पूरे घर में उन आवाजों को ढूंढने का प्रयास करने लगा।

क्षणिकाएं

निर्दोष

वह न चोर था
न कातिल
न गुनाहगार
फिर भी उसे
दोषी ठहराया गया
क्योंकि वह दीन
अनपढ़ और भोला था
ओढ़े सत्य–संयम
व सादगी का चोला था।

डॉ जयसिंह अलवरी
सम्पादक साहित्य सरोवर
दिल्ली हाउस,
सिरूगुप्पा–583121
जिला–बेल्लारी कर्नाटक
मो.–9886536450

डॉ. शैल चन्द्रा
रावण भाठा, नगरी
जिला– धमतरी
छत्तीसगढ़
मो.–9977834645

मार्क्स एवं गांधी
बनाम
मार्क्सवाद एवं गांधीवाद
1–परिचय

हल्की हवा का झोंका आया और पीपल के पत्ते झूम उठे। मई का महीना था, सांझ होने में देरी थी। धुरंधर अहीर अपने गमछे से माथे का पसीना बार–बार पोंछ रहे थे। तभी बीसू कुम्हार उनके निकट अपना आसन जमाए। धुरंधर अहीर ने तेवर दिखाया–'फरके बैठिए। बहुत उमस है। निकस मत आइए।'

बीसू ने अपनी ऐसी मुद्रा बनाई मानो कहना चाहते हों कि– जा रे! उमस तुम्ही को लग रहा है....लगता है बलड बहुते गरम है।

चौपाल में धीरे–धीरे सभी बड़े बुजुर्ग इकट्ठा हो रहे थे। पीपल के विशाल पेड़ की छांव! बड़ा सुकून था। चौपाल से लगा ग्राम–देवी का मंदिर! संध्या पूर्व पंडित जी आकर देवी के पट खोलेंगे।

पितामह आसीन हुए। पास ही रखे घड़े का ठंडे जल से गला तृप्त किया। बीड़ी सुलगाई और फिर हमारी तरफ मुखातिब हुए।

आज पितामह क्या सुनायेंगे हमें! –उत्सुकता सभी के भीतर थी।

पीपल की छांव से परे हमने नीले आकाश की ओर देखा, आकाश पिघलता प्रतीत हुआ। बादलों के निशान नहीं। जमीन तपती। मगर हम सुकून से थे। मंदिर और वृक्ष की कृपा थी।

''आज हम कुछ आधुनिक कथा सुनाने वाले हैं। आधुनिक सभ्यता की।'' पितामह बोल रहे थे। जो लोग खुसूर–फुसूर कर रहे थे, पितामह की आवाज सुनकर शांत हो गये।

''तो हम कह रहे थे कि इस कथा को सबको सुनना और गुनना चाहिए। समझना चाहिए। कुछ बातें ऐसी होती हैं कि बिना समझे कुछ विद्वान हमें उल्लू बनाते रहेंगे। हमारी समझ में कूड़ा ठंसते रहेंगे। इसलिए अच्छा है कि चीजों को हम अपनी आंख से, अपनी दृष्टि से देखना–परखना सीखें। किसी पोथी के चश्मे से नहीं।'' पितामह रूक गये। बीड़ी का एक जोरदार कश लगाया और फिर शुरू हो गये।

''यूरोप अंधकार युग से बाहर निकल आया था। मशीनों का आविष्कार धीरे धीरे होने लगा। वाष्प के इंजन, ट्रामें, मोटर गाड़ियां, आधुनिक सुरक्षित जहाज, कपड़ा मिलें, लोहा और इस्पात बनाने की नई तकनीक –चारों ओर कलाकार और वैज्ञानिक मानव जीवन को सुगम और विज्ञान के चमत्कार से लाभान्वित कर देना चाहते थे। मध्ययुग के बाद देखते ही देखते यूरोपिय साहसी लोगों ने समुदी यात्राएं प्रारंभ की। नये–नये देशों की खोज हुई। वहां के संसाधनों की जानकारी हासिल हुई। पेड़–पौधों, जड़ी–बूटियों और मसालों के बारे में ज्ञान प्राप्त हुआ। अछूते सोना–चांदी, जंगल–जमीन और तरह–तरह के प्लांट और पौधों ने इन्हें आकर्षित किया। अंगेजों ने हममें चाय के प्रति रूचि जगायी। नील की खेती की। असम के बागानों में चाय की व्यवसायिक खेती की। यहां तक कि अपने लाभ के लिए स्थानीय लोगों को गुलाम तक बनाया। पर ये सब बहुत बाद की तस्वीर है, इस बीच यूरोप में ही कुछ ऐसे विद्वान हुए जिन्होंने मानवीय सोच और लालच के विरूद्ध आर्थिक एवं सामाजिक/राजनीतिक सिद्धांत गढ़े।''

''मानव की हवस ने उन्हें कभी न खत्म होने वाले धन कमाने को प्रेरित किया। उनका लाभ मिलों और फैक्ट्रियों में छुपा था। कपड़ा उद्योग में क्रांति आ गयी थी। मशीन के आ जाने से उत्पादन तेजी से हो रहा था। दूसरे, उन मालों को खपाने के लिए लगभग पूरी दुनिया खुली पड़ी थी। शेष विश्व जो इन आविष्कारों से अछूते थे, जहां सीधी–सादी जीवन प्रणाली थी, वहां के भोले–भाले लोगों को बाध्य किया गया, अपना गुलाम बनाया गया। उनसे मनचाहे काम कराये गये। उनकी जमीन पर अपने लाभ के लिए अनाज की जगह व्यवसायिक खेती की गयी जिसका पूरा मुनाफा इन चंद लोगों, कंपनियों के हाथ गया। इस्ट इंडिया कंपनी हमारे देश में यही काम कर रही थी। यही नहीं, इन श्रमिकों के साथ मालिकों का व्यवहार अत्यंत अमानवीय था। यूरोपीय कॉटन मिलों में, स्टील की फैक्ट्रियों में, खनिज क्षेत्र में श्रमिकों, बच्चों, औरतों से अठारह–अठारह घंटे का लिया जाता था। वे फैक्ट्री की धड़कनें थीं, उनके बगैर कारखाना बंद हो जाता मगर इन्हें क्या हासिल होता–बड़े अस्वस्थकर, गंदी श्रमिक बस्ती, रोग–दवाइयों का इंतजाम नहीं, शिक्षा नहीं, खुली हवा नहीं। श्रमिक बीमार पड़ता तो बिना इलाज मारा जाता, बच्चों–बूढ़ों के स्वास्थ की चिंता नहीं। धन भी मासिक उतना ही देते जिससे दो वक्त की रोटी मुश्किल से नसीब होती। इनकी स्थिति गुलामों जैसी थी। बड़ी अमानवीय व्यवहार इनके साथ किये जाते।''

''कार्ल मार्क्स जो कि जर्मनी में जन्मा था– उसने बड़ी गहरी दुष्टि इन पर डाली। उसने सारी परिस्थितियों, घटनाओं का बड़ा सूक्ष्म अवलोकन किया। उसने हमारी तरह महज

भावुक होकर दुखदायी काव्य की रचना नहीं की, वरन् उससे आगे जाकर उसका चिंतन अपनी परिकल्पना का एक वैज्ञानिक आयाम दिया। उसने बड़े तर्कपूर्ण और तथ्यात्मक तरीके से ये बताया कि कैसे उसकी परिकल्पना एक विज्ञानसम्मत सिद्धांत का रूप ले सकती है। भौतिक द्वंदवाद, बुर्जुवा, प्रॉलितेरियन उसके सिद्धांतों में बार–बार आये। उसकी गहरी व्याख्या मार्क्स द्वारा की गई। मार्क्स ने बताया कि पूंजीवाद से होकर साम्यवाद तक का सफर आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में कुछ सोपानों से होकर गुजरता है। मानवीय संग्रह करने की प्रवृत्ति अनिवार्यतः पूंजीवाद को जन्म देती है, लेकिन पूंजीवाद जो कि भौतिक द्वंदवाद पर आधारित है, बुर्जुवा वर्ग द्वारा संचालित है और प्रॉलितेरियन समाज इनकी जरूरतें पूरी करता है। सारा लाभ बुर्जुवा बनाता है। श्रमिक अपना श्रम बेचता है–उनका घोर शोषण होता है। चूंकि बुर्जुवा का लाभ शोषण आधारित है–वह शोषण से पीछे नहीं हट सकता, श्रमिक मजबूर है, गुलाम है, दयनीय है, इस तरह इस व्यवस्था में एक स्थायी तौर पर भौतिक द्वंदवाद दिखाई देता है। समाज स्पष्ट रूप से इन दो वर्गों में बंटा है। द्वंद अनिवार्य है क्योंकि दोनों के निजी हित सर्वथा भिन्न हैं। एक का हित दूसरे के हित से विरूद्ध है। बुर्जुवा अगर श्रमिक वर्ग का हित करेगा तो अपने लाभ से वंचित होगा। उसे विश्व बाजार में अपने जैसे पूंजीवादियों से पंगा लेना है। इस प्रक्रिया में वह जितना श्रमिकों का हक मारेगा, शोषण करेगा– बाजार में टिक पायेगा। अन्यथा बाजार की क्रूर व्यवस्था स्वयं पूंजीपति का नाश कर देगी, क्योंकि अधिकतम लाभ ही यहां का मूल है। और अधिकतम लाभ माल उत्पादन के घटकों पर निर्भर है। जैसे फैक्ट्री चलाने के लिए कोयला या ईंधन। इस पर पूंजीपति का सीमित अधिकार है, उसी तरह कच्ची सामग्री। कपास हो या गन्ना, या कच्चा लोहा या बाक्साइट। इस पर भी उसका सीमित अधिकार है–मगर वह अनपढ़ श्रमिकों को अपना दास बना सकता है। अठारह घंटे काम ले सकता है, न्यूनतम मजदूरी से भी कम मजदूरी देगा। रहने, खाने जीवन की गुणवत्ता से कोसों दूर!''

''मार्क्स ने इसमें निहित सच को अपना वैज्ञानिक सच बनाया और सिद्धांत प्रतिपादित किये। वर्गों के बीच 'टकराव' (clash between class) को अनिवार्य बताया और इस टकराव ये होकर मार्क्सवाद के कई चरणों की व्याख्या की– जिससे होकर एक समाज या विश्व समाज गुजरता है। इसकी व्याख्या आगे की जायेगी, हम यहां कुछ परिभाषित शब्दों की व्याख्या करना चाहेंगे, जैसे बुर्जुवा! ये वो वर्ग है जो सीधा–सीधा समझें तो पूंजीपति हैं या पूंजीपतियों के साथ हैं। इनका हित एक है। जैसे कुछ लोग पूंजी उत्पादन से न भी जुड़ें मगर उनका स्वार्थ पूंजीपतियों के साथ ही एक है–जैसे –सामंतशाही, राजाशाही। ये सभी बुर्जुवा हैं। समाज में प्रॉलेतेरियन' समूह हैं जो कि श्रमिकों को उपलब्ध कराता है। स्पष्ट है कि बुर्जुवा इन्हीं का शोषण करता है और इन्हीं के शोषण पर इनकी (पूंजीपतियों–बुर्जुवा समाज) की सफलता निर्भर है। अतः भौतिक रूप से द्वंद (clash) अनिवार्य है।''

पछिआ हवा का झोंका आया। बयार मंद–मंद बहने लगी। पीपल के पत्ते खड़खड़ाने लगे। माथे से पसीना टपकना बंद हो चुका था। सांझ ढलने को थी। क्षितिज लाल हो चला था। पंछियों का झुण्ड पत्तों के भीतर से अपनी उपस्थिति दर्ज कर चुका था। पुजारी जी मंदिर का पट खोल चुके थे। कुछ महिलाएं आरती की थाल ले देवी के संध्या – जागरण की प्रतीक्षा में खड़ी थीं। हम सब पितामह की बात मगन हो सुन रहे थे। कोई चूं–चां नहीं। पितामह स्वयं ही हमारे मन में उठ रहे सवालों को समझ रहे थे और लगे हाथों समाधान भी किये जा रहे थे। धुरंधर ने पितामह के लिए घड़े का पानी गिलास में भरकर लाया। गला तृप्त कर खैनी घिसे और मुंह में रखे। मौका देख हमारे बीच से कई लोग खैनी ठोंकने लगे, मिरती ने बीड़ी सुलगाई, कोई–कोई तो हुक्का गुड़गुड़ा रहा था।

खैनी थूककर पितामह बोले, ''अक्सर मार्क्सवाद, समाजवाद, साम्यवाद को एक ही मान लिया जाता है। इस सिद्धांत से जुड़े और भी वाद हैं जो ऐतिहासिक कारणों से इस सिद्धांत के साथ जुड़ते चले गये, जैसे–लेनिनवाद, स्तालिनवाद, माओवाद, नक्सलवाद इत्यादि। जबकि मार्क्स के सिद्धांत को इन 'वादों' से कोई लेना–देना नहीं था। मार्क्स ने कभी बंदूक उठाने की बात की नहीं थी, ना ही इस तरफ ऐसा कुछ इशारा ही किया। इस पर मैं बाद में स्पष्ट करूंगा फिलहाल तो आप लोग समझ लो कि मार्क्सवाद एक सिद्धांत है जिसके मूल में ऊपर हमने स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इस मार्क्सवाद की आदर्श स्थिति है साम्यवाद! जैसा कि मार्क्स ने परिकल्पना की कि मार्क्सवाद के रास्ते होकर समाज ऐसी स्थिति में पहुंचेगा जो आदर्श होगी–वहां कोई राजनीतिक सिस्टम नहीं होगा, बुर्जुवा और श्रमिक वर्ग जैसा वर्ग नहीं होगा, अर्थात समाज वर्गहीन होगा, अर्थव्यवस्था के उत्पादों पर सभी का बराबर हक होगा। ना मेरा ना तेरा। व्यक्तिगत सम्पति की अवधारणा नहीं होगी। सम्पति पर सभी का समान अधिकार होगा–यही 'साम्यवाद' है जिसकी प्राप्ति मार्क्स के सिद्धांतों के तहत प्राप्त होनी है।

पूंजीपति संघर्ष के आगे समाजवाद एक ऐसा पड़ाव है जिससे होकर राज्य व समाज गुजरेगा। साम्यवाद का लक्ष्य अचानक हासिल नहीं होना है–उसके पूर्व समाजवाद का प्लेटफार्म आयेगा जहां जनता, जनता के समूह इकट्ठा होकर उत्पादन–वितरण इत्यादि घटकों को स्वयं नियंत्रित करेंगे। अर्थात वे बुर्जुवा को अपदस्थ करेंगे–सरकारें भी समाजवादी होगी–वह कोआपरेटिव मूवमेंट के साथ होगी, उन्हें संरक्षित करेंगी।''

''इस तरह इनमें मूलभूत भेद है जिन्हें समझना आवश्यक है। आज दुनिया में कनाडा, फिनलैण्ड, डेनमार्क, चीन, क्यूबा इत्यादि देशों की राजनीति और समाज इसी साम्यवादी स्टेट (दौर) से गुजर रही है।''

इतना कह पितामह थोड़ी देर रूके। फिर बोले–''कहते हैं ऐसी अवधारणा मार्क्स ने अपने मित्र फ्रेडरिक एंगेल के साथ कॉफी टेबल पर विचार–विमर्श के दरम्यान देखें। अपनी कल्पना को दोनों ने मिलकर एक वैज्ञानिक आयाम दिया। 1848 में दोनों के प्रयास से ''कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो'' प्रकाशित हुई। ये मार्क्स के सिद्धांत का एक तरह से रोड मैप साबित हुआ। रसियन क्रांति 1917 में घटित हो चुकी थी। वहां मार्क्स के सिद्धांतों को मानने वालों ने जारशाही को उखाड़ फेंका। इसी बीच प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति (1914–1918) हुई। जारशाही द्वारा शोषण में भागीदार मित्र राष्ट्रों की तमाम 'डील' समाप्त कर दिये, यही नहीं मार्क्सवाद के प्रभाव में रसिया ने मित्र राष्ट्रों द्वारा किये गये गोपनीय करार जिसमें 'लूटपाट' संबंधित करार था, उजागर कर दिया। मार्क्सवादी रसिया ने पराजित राज्यों से कोई क्षतिपूर्ति नहीं ली। बाद में यू0एस0एस0आर0 के बैनर के तले और विश्व के प्रथम मार्क्सवादी नेता लेनिन के नेतृत्व में सोवियत यूनियन ने खूब तरक्की की। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जिस जारशाही (राजतंत्र) का अंत हुआ और मार्क्सवादी विचारधारा के तहत सोवियत यूनियन अपने आंतरिक और विश्व–व्यवस्था में महत्वपूर्ण दखल रखने लगा। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् (1939–1942) तो पूरे विश्व में सोवियत यूनियन का दबदबा पूरी दुनिया में लहराने लगा। सोवियत यूनियन के वर्चस्व का मतलब चहुंओर मार्क्सवाद की पताका! पचास के दशक में मार्क्सवाद की अफीम इतनी व्यापक और गहरी हो चली थी कि अमेरिका जैसे पूंजीवादी देश ने अपनी तमाम कोशिशों के बाद भी चीन में मार्क्सवादी सरकार की जीत को रोक न पाया। चीन ने माओ के नेतृत्व में विदेशी गिद्धों से देश को मुक्त कर लिया। यह अलग बात है कि माओ ऐसा करते हुए सत्ता बंदूक की नली से प्राप्त की। संपूर्ण मार्क्सवाद में सत्ता प्राप्ति के लिए इस तरह की मान्यता कहीं नहीं दी है। माओ का लक्ष्य कम्यूनिस्ट सरकार की स्थापना थी, मगर अपनी जमीन की जरूरत के लिए (एक साथ चीन चार–पांच विदेशी कंपनियों /सरकारों के गिरफ्त में था।) माओ ने बंदूक उठाया। प्रसंगवश बता दूं कि उसी से प्रेरित होकर बंगाल के नक्सलबाड़ी क्षेत्र से नक्सल आंदोलन प्रारंभ हुआ। इसे कहते हैं कैसे चावल और दाल पककर खिचड़ी–अचार में तब्दील हो जाता है। मार्क्स ने सिर्फ हमें चावल–दाल के बारे में बताया–मगर दुनिया के अलग–अलग हिस्सों में अलग–अलग नेताओं के नेतृत्व में वह चावल–दाल कभी पुलाव तो कभी खिचड़ी में तब्दील होता रहा। हमारे देश की भी स्थिति ऐसी ही थी–बल्कि कुछ ज्यादा ही विचित्र!''

इतना कह ढल चुकी शाम और मंदिर से आरती की गूंज सुन पितामह ठहर गये। अभी भी हल्की रोशनी थी जिसमें हम एक दूसरे का चेहरा देख पा रहे थे। पीपल के पत्तों से पंछियों की चहचहाटें कब का शांत हो चुकी थीं। पछिआ अब भी मंद–मंद बह रहा था। पितामह ने कहा, ''अच्छा, सज्जनों! कल फिर मिलेंगे।'' ऐसा कहकर वे उठ गये। हम सब भी अपना आसन छोड़ दिये।

कल पितामह कौन सी कहानी सुनायेंगे, इसी कहानी को आगे ले जायेंगे या और कुछ....! हम सबके मन में जिज्ञासा थी।

अब तो कल की प्रतीक्षा करनी है।

क्षणिकाएं–डॉ.जयसिंह अलवरी

उपद्रवी

ये जो उपद्रवी
यहां–वहां
उपद्रव मचा रहे हैं।
भटकाने ध्यान
साजिश कोई गहरी
यह रचा रहे हैं।।

भीड़

बदल भेष
खड़े थे जो भीड़ में
लिए तीर–तलवार।
वे भूल रिश्ते–नातों को
तुले थे करने
मानवता को शर्मसार।

घर

ये रिश्ते तो
बन जाते हैं
मगर–
दिलों में घर
यूं ही नहीं बनते।

2—गांधी जी और मशीन

आज हम फिर पीपल की छांव तले बैठे थे। लगभग सब के सब आ चुके थे और समय पूर्व। हमें पितामह की बातों में रस आ रहा था। हम भारतीय इस 'रस' के बड़े ही आग्रही होते हैं।शुष्क ज्ञान तो हमें कभी रास नहीं आया। जब तक व्यंजन को स्वाद देने वाली तरी न हो, नमक—मिर्च और अचार—पापड़ ना हो, हमारा भोजन नीरस है। यह हमारी खूबी और खामी भी है। आप चाहे जो समझें। हम आम भारतीय जन हैं, जब तक बातों में मजा आता है, गप्प में मजा आता है, भोजन में मजा या स्वाद है—वह हमारा भक्ष्य होता है। आंच पकाकर सिर्फ नमक डालकर हम क्यों खाएं— हमारी मिट्टी में दर्जनों मसाले हैं सब के सब औषधीय गुणों से भरपूर और स्वाद—रसयुक्त! हमारा व्यंजन चम्मच—कांटे का मोहताज नहीं, हमारी पांच उंगलियों में ही रस है, इसे हम सभी भारतीय अच्छी तरह से जानते हैं। क्या आप भात—दाल पापड़ या तिलोरी चम्मच के साथ खाना चाहेंगे ? या सेवईं रोटी या भाखरी—चटनी या दाल—बाटी—चूरमा ? हमारी बोली संगीत साज, सभी में रस है। हमारे कपड़े सादे हैं मगर ऐसा नहीं है कि वे बांके नहीं! रसिकता नहीं! हमारे धर्म में भी रस है। मायथोलॉजी में रस है। हमारा जो भी ज्ञान सम्पति है वह टीकाकारों द्वारा आमजन तक रसिक भाषा में ही संचित है। हमारे बीच गाह्य है। जिस भी वाद ने धर्म सम्प्रदाय ने सिर्फ ज्ञान की बातें की, वह हमारे जेहन में नहीं उतरा। जगह बनाया तो उसी तरह की बातों ने जो हमारे चित्त ने स्वीकार किया, बुद्वि ने नहीं। हम असल में आम भारतीय बौद्धिक हैं ही नहीं, हमें बुद्धिमतापूर्ण बातें पसंद हैं मगर शुष्क ज्ञान के रूप में नहीं। हम बुद्धि—विरोधी कतई नहीं—बस हमारा ग्रहण करने का तरीका जरा अलग है। हमारी रसना अलग है। यह कोई खूबी या खामी नहीं—यह हमारा स्वरूप है। हमारी विशेषता! इसलिए हम अपने जैसा है, हमारी तुलना पश्चिम या अन्य लोगों से नहीं की जा सकती।

आखिर यह सब हम आम भारतीय के रूप में क्यों बताना चाह रहे हैं ? इसलिए कि जब मार्क्सवाद के प्रचार—प्रसार अपने देश के संदर्भ में होने की बात आयेगी तो मैं उस महत्वपूर्ण कारणों में सबसे उल्लेखनीय बात की ओर आपको इंगित कर सकूं। कैसे बाहरी शुष्क ज्ञान (मार्क्सवाद) हम आम भारतीय समझ ही नहीं पाये। कारण और भी हैं—फिर कभी. ...।

फिलहाल, हम सब की तरह पितामह भी कुछ जल्दी पधार गये थे और खैनी—चूना के पूर्व अपनी टीका रख दी। घड़े का ठंडा पानी पिया। हम सब उनके आगे की कहानी सुनने को बेताब थे।

पितामह बोल पड़े—''आज हम आपको कल के ही बताये थ्योरी को कुछ व्यवहारिक तरीके से समझाने का प्रयास करेंगे।''

हम सब चुप! हम सब उनका सिर्फ मुंह ताक रहे थे। पीपल के पत्ते खड़—खड़ करते। गांव का आवारा कुकुर एक छांव में सुस्ता रहा था। नहीं, वह आवारा नहीं था, हमारा गांव ही उसका घर है। वह कुकुर हमारी संस्कृति का बढ़िया नमूना है। उसे सब कुछ ना कुछ देते हैं और वह बदले में पूरे गांव की रखवाली करता है। उसका नामकरण भी हो गया है—जॉनी! इंग्लिश नाम!

सन्नाटा पसरा था। इंतजार हो ही रहा था कि पितामह के होंठ हिले। तभी भोगन पंडित बड़ी जोर का पादे। और लंबा! पहले एक—दो को हंसी आई, फिर बजरंगी कमेंट किए—''सतुवा अचार जादे खाए हैं क्या.....!

एक ठहाका लगा! भोगन पंडित भी मुस्कुराने लगे।

''अरे नहीं ससुरारी से साली इनके लिए छोहाड़ा के हलुवा बनाकर भेजी है—शुद्ध घी में।'' किसी ने कमेंट किया। पीछे से आवाज आई—''वोही हम कहें कि इतना जोरदार साउंड कैसे.....।'' कुछ देर हंसी ठठ्ठा चलता रहा।

अब पितामह की बारी थी—

''आप लोगों ने गौर किया होगा कि मार्क्सवाद में मूल बातें क्या थी। धन। धन का संचय या धन के प्रति घोर आग्रह। संचय का भाव। धन को और धनवान बनाने के लिए कमजोर लोगों का शोषण! यह मानव विरोधी चरित्र है। कमजोर लोगों को भी न्यूनतम अधिकार प्राप्त हो—रोटी, कपड़ा, घर, स्कूल, स्वास्थ्य और आजादी। समानता के भाव। मार्क्स ने देखा कि बुर्जुवा का स्वार्थ इतना अंधा है या परिस्थितियों से इतना मजबूर है कि वह आम श्रमिकों के लिए शुभेच्छु हो ही नहीं सकता। व्यवस्था ने घोर शोषण को जन्म दिया। घोर असंतोष और श्रमिकों की दयनीय स्थिति।''

''जब उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों का भी वही हक प्राप्त हो, जिसका कि वह अधिकारी है—इसका सीधा अर्थ निकलता है समाज में धन का समान वितरण। धन का कहीं एकत्रीकरण नहीं वरना सभी का समान अधिकार; अर्थात शोषण और असंतोष खत्म। यही समाज ऐसी राज्य—व्यवस्था प्रदान करेगी जिस शासन में 'रूलर' व 'रुल्ड' की पहचान कठिन होगी। अर्थात वास्तविक साम्यवाद की आदर्श स्थिति।''

''इसी तरह का विचार हमारे देश में गांधी ने दिया। हालांकि उन्होंने कोई आर्थिक व सामाजिक थ्योरी नहीं बनाई, मगर अर्थव्यवस्था संबंधी उनके विचार थे जो यत्र–तत्र मिलते हैं। इन विचारों से सिद्ध होता है कि गांधीजी ने हालांकि कोई वैज्ञानिक अवधारणा जैसे तथ्य नहीं रखे मगर इस ओर उनकी चिंता और चिंतन साफ था। कह सकते हैं वे मानवीय अवधारणाएं हैं। अब उदाहरण स्वरूप आपको उनके विचार जो मशीन को लेकर थे, उसी को देखिए। किसी ने उनसे पूछा कि गांधीजी आप मशीन–विरोधी हैं –ऐसा क्यों! गांधीजी उस वक्त चरखा चला रहे थे, उन्होंने चरखे की ओर इशारा कर कहा कि वे मशीन विरोधी कैसे हो सकते हैं–चरखा भी तो एक मशीन है। हां, वे उस तरह के मशीनीकरण या तरक्की का विरोध करते हैं जो मानवीय श्रम की अनदेखी करता है। हमारे श्रम को ही पंगु बनाता है, अर्थात बेरोजगार बनाता है।'' इतना कहा पितामह थोड़ा रुके। हम सब बड़े ध्यान से उन्हें सुन रहे थे। और भोगन पंडित भी।

पितामह आगे बोले, ''इसे जरा और आगे जाकर समझने की कोशिश करते हैं। मान लीजिए एक सौ परिवारों की बस्ती है। उस बस्ती के हर परिवार के सदस्य चरखा से सूत बनाते हैं। यह गांव सूत से धोती और तौलिया निर्मित कर रहा है। इसका सीधा अर्थ हुआ कि गांव के परिवारों को सूत कातने से लगभग समान आय की प्राप्ति हो रही है। संभव है गांव में ही कोई ऐसा हुनरमंद व्यक्ति, मेहनती व्यापारिक बुद्धिवाला कुशल श्रमिक मौजूद हो जो इन उत्पादों की रंगाई–पुताई, डिजाइन, उनका संग्रहण कर दूर–दराज के मेलों–शहरों में उत्पाद बेचता हो और गांव के अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक कमाता हो शायद दस गुना अधिक, शायद पचास या सौ गुना अधिक। वह गांव का अमीर है और उसकी जीवन शैली भी, जाहिर है अन्य लोगों से भिन्न होगी। गांधी जी ने इस तरह अपेक्षाकृत अधिक धन कमाने वालों की स्थिति से इनकार नहीं किया। यह स्वाभाविक है, मगर जैसा कि गांधी जी का स्वभाव था, उन्होंने यह भी विचार रखा कि ऐसे लोग जो समाज में रहकर समाज के अन्य जनों से अधिक अर्जित करने की क्षमता और गुण रखते हैं तो ऐसे लोगों को अपना अतिरिक्त अर्जन समाज के हित में ही खर्च करना चाहिए, क्योंकि ये ही समाज के 'ट्रस्टी' हैं। समाज का ट्रस्टी समाज हित में ही सोचेगा। उसे समझना चाहिए कि उसके अतिरिक्त लाभ में वहीं का आमजन या समाज की ही प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष भूमिका होती है।''

''इस तरह गांधी जी ने ऐसे लोगों को ना बुर्जुआ कहा ना ही पूंजीपति बल्कि समाज के ट्रस्टी के रूप में देखा। वर्ग संघर्ष जैसी बात नहीं। लूट या शोषण की बात नहीं।''

''गांधी जी के इस ट्रस्टीशिप वाले विचार को एक आदर्श भाव ही कहा गया और व्यवहारिक जीवन में इन विचारों को पूरी तरह असफल माना गया।''

''गांधी के इस विचार की सफलता–असफलता की मीमांसा बाद में करेंगे, पहले देखते हैं उनका मशीन संबंधी विचार कितना क्रांतिकारी है या यूं ही भावुक कल्पना।''

''धूरंधर! जरा खैनी खिलाइए, मिजाज टंच कीजिए फिर बताते हैं।'' पितामह पेड़ से टिक कर पसर गए। हम लोग भी थोड़ा रिलैक्स होना चाहते थे। खैनी घिसाने लगा, चुटकी बजने लगा। जिन्हें पियास लगा था वह उठकर घड़े का पानी पिए। गर्मी में घड़े का पानी अमृत सरीखा। गला तृप्त कर देवे। जो सत्तू खाकर आए थे उनको पानी अधिक लगा।

पितामह धूरंधर का बुद्धि–वर्धक चूर्ण खाए। सब ने खाया। जिन्हें बीड़ी फूंकना था वह धुंआ उड़ाए।

''तो हम कह रहे थे.....कि गांधी जी का मशीन संबंधी विचार! हम जरा पीछे लौटते हैं, उसी गांव में जहां प्रत्येक परिवार चरखा चलाता है। सभी लगभग बराबर कमाते हैं। इसका मतलब क्या हुआ, मतलब हुआ उस गांव में सूत कातने का कारखाना या मिल स्थापित है। थोड़ी कल्पना और बढ़ाते हैं। आसपास के क्षेत्र में कपास की खेती होती है कपास की मांग की आपूर्ति होती है, परिवहन और वितरण की एक व्यवस्था बनती है, निर्मित माल सूत से कपड़े या अन्य उत्पाद तैयार किए जाते हैं, तैयार माल को आसपास या दूरदराज के बाजार केंद्रों में बेचा जाता है। इस तरह मांग और आपूर्ति में एक सामंजस्य है। इस तरह गांधी जी के मशीनी अवधारणा के तहत जहां मशीन का न्यूनतम प्रयोग मानव करेगा परिवहन वितरण इत्यादि सभी आयामों में मानव श्रमिक लगे हैं। एक ट्रक की जगह 8–10 बैलगाड़ी माल की ढुलाई कर रही है। सीधा मतलब है कि धन का वितरण समान है, समाज में संपन्नता जैसी चीज नहीं है मगर संतुष्टि हासिल है। मानव श्रम की गरिमा व्याप्त है। वैसी व्यवस्था की हामी नहीं जिसमे धन अनावश्यक रूप से कहीं–कहीं ही एकत्रित हो जाता है। धन का एकत्रीकरण है भी तो श्रम गुणवत्ता के कारण। (जिसे समाज का ट्रस्टी बताया गया)''

''इस बीच पास के नजदीकी क्षेत्र में कोई पूंजीपति या धनी व्यक्ति कपड़ा मिल स्थापित करता है, 25–50 श्रमिकों की मदद से और मशीन की सहायता से व्यापक माल निर्मित करता है और परिवहन (द्रुत परिवहन) की सहायता से

आसपास और दूरदराज के क्षेत्र में एकाधिकार प्राप्त कर लेता है। उसका माल सुंदर, मजबूत और सस्ता भी है। उत्पादन कई गुना ज्यादा। बाजार में मोनोपली आ गया। मिल मालिक खूब मुनाफा कमाता है। वह अपने श्रमिकों को ठीक–ठाक वेतन और बोनस भी दे रहा है। वह पूंजीपति तो है मगर उसका चरित्र अभी सामंतवादी है–अपने श्रमिकों से प्यार भी करता है, उनका ख्याल भी रखता है।''

''कहने की आवश्यकता नहीं कि हथकरघा उद्योग जो संपूर्ण गांव कभी मिल की तरह स्थापित था–बिना स्थापना लागत के, बिना भवन के, बिना किसी अधिकारी कर्मचारी के, बिना किसी चौकीदार के.....बिना पेपर आदेश के, वह व्यवस्था पास में मिल स्थापित होने के बाद उसकी आदर्श स्थिति चरमरा गई। सम्पूर्ण गांव के परिवार बेरोजगार हो गये। परिवहन–वितरण और बाजार का पूर्व स्वरूप लुप्त हो गया। धन का समान वितरण खत्म!''

''अब मिल कहां स्थापित है–काम यहां भी है मगर सीमित लोगों के पास। काबिल लोगों की पूछ परख बढ़ेगी, ऑफिस में लेखापाल और क्लर्क होंगे मैनेजर और मालिक होंगे।''

एक मशीन का आगमन क्या हुआ आर्थिक–सामाजिक स्वरूप को कैंसर रोग लग गया। जो मिल अभी सामंतशाही जैसी प्रतीत होती थी उसकी परीक्षा अभी बाकी है क्योंकि एक बड़ी कंपनी ने यहां अच्छा बाजार देखा और मॉडर्न मिल की स्थापना पास ही हो गई। इस मालिक ने कपास उगाने वाले कृषकों से या उत्पादक खेत पर भी एकाधिकार कर लिया। बाजार को 'एक पर एक फ्री' पॉलिसी से ग्राहकों को लुभाया जाने लगा। और....., इस तरह यह बीमारी आगे कुछ और गंभीर होती है–मिल मालिकों में घोर प्रतिस्पर्धा शुरू होती है–अब श्रमिकों का शोषण होता है। लूट मचती है। श्रमिक जाएं तो जाएं कहां। पुरानी व्यवस्था मर चुकी और नई व्यवस्था में सबके लिए स्थान नहीं। असंतोष बढ़ता है। प्रतिस्पर्धा में टिकने के लिए श्रमिकों की छंटनी होती है–वेतन व भत्ते कट किए जाते हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य गया भाड़ में।''

''बीमारी और आगे बढ़ती है–पूरे विश्व में परमिट और कोटा प्रणाली समाप्त किया जा रहा है। खुलेपन का दौर आता है। विश्व पटल पर अपना बैलेंस शीट का घाटा कम करने के लिए, और तकनीक और पेट्रोल का आयात अनिवार्य करने के लिए विश्व बैंक और विश्व संस्थाओं से कई प्रतिकूल शर्तों को स्वीकार करते हुए विकासशील देशों को कर्ज हेतु समझौता करना पड़ता है। खुलापन का दौर प्रारंभ होता है। देश एक बाजार (पोटेंशियल) बना हुआ है। अब विश्व के कपड़ा मिलों से करार अनुसार उनके सस्ते और घटिया मगर आकर्षक माल हेतु तटकर समाप्त किए जाते हैं। विश्व बैंक ने हमारे सरकार को धीरे–धीरे सब्सिडी खत्म करने की शर्त रखी है। अब क्या होता है.....अपना बाजार विश्व के उत्पादों से भर गए। हमारे फैक्ट्री भी पहले जो रोजगार देते थे अब उनके श्रमिक बेरोजगार हो गए। स्थानीय फैक्ट्री बंद हो चला। हमारा स्थानीय मिल का माल विदेशी माल के आगे टिक नहीं पाया। यही हुआ उत्तर प्रदेश के गन्ना कारखानों के साथ। हम करार अनुसार विदेशों का बीट से बना सस्ता शक्कर आयात करने को विवश हैं –हमारे फैक्ट्रियों से निकला उच्च गुणवत्ता वाला अपेक्षाकृत महंगा गन्ने का शक्कर कौन खरीदेगा। बाजार विदेशी बीट वाली कार्बन युक्त शक्कर से पटा पड़ा है। अतः उत्तर प्रदेश के हजारों गन्ना मिलें (शक्कर फैक्ट्री) बंद हो जाते हैं और ऐसा तब होता है जब राज्य की सत्ता समाजवादियों के हाथ में थी। क्या मजबूरी हो सकती है....?''

और यह सिलसिला कहीं खत्म होता नहीं दिखता....। जो लूट और व्यापार विश्व की कंपनियां हमारे यहां कर रही हैं वही काम हमारे यहां की कंपनियां दुनिया के गरीब देशों में कर रही है। पूरा तालाब ही प्रदूषित है।''

''क्या हम आज पीछे मुड़ कर देखना पसंद करेंगे.... गांधीजी के उस विचार को फिर से समझ कर मशीन और तकनीक पर आलोचनात्मक दृष्टि डालना चाहेंगे....?''

पितामह ने हमारी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा। हम सब तो उन्हें सुन रहे थे, हमारे पास उनके सवाल का कोई जवाब नहीं था। हम विकसित राष्ट्र का पीछा करते इतना आगे आ गए हैं कि हम अपना रास्ता ही भूल गए। हमारे पास एक भी ऐसा बुद्धिमान या ज्ञानी नहीं जो सच्ची बात कर सके। सच कहने के लिए साहस चाहिए, विश्वास चाहिए। हम विदेशी टेबलेट खा–खा कर अपनी क्षमता खो बैठे। कहां का सच और कैसा साहस ? अमेरिका और पश्चिम के हम कार्बन कॉपी, खराब सी फोटो कॉपी ? हम क्या इन पृष्ठों में खाक अपनी वास्तविकता ढूंढ पाएंगे। हम ना अतिवादी है, हम ना ठीक–ठाक नकलची है, हम ना मॉडर्न है, हम साले ठीक–ठाक पुरातन भी नहीं, हम सिर्फ एक अच्छे गुलाम हैं–मास्टर तो हो ही नहीं सकते। मास्टर होंगे भी तो कैसा–अपने से निपट गरीबों पर हुकुम करने वाले! हम खाक समानता को जीते या समझते हैं। हम एक ही चीज में पीएचडी है–पश्चिम का खराब से खराब फोटो कॉपी! एक और जगह हम सुपर–डुपर हैं–अपने बीच कोई सॉलिड और प्रमाणित काम करेगा उसके

प्रति लंबर एक का दोगलापंती करना हमें आता है। हम अपनी अच्छी चीजों के प्रति मुर्दा हैं। हमारी आत्माओं का स्थाई तर्पण हमारे लौंडे, विद्वान बेटों ने गया में पिंडदान कर निपटा दिया है। इसलिए हमारी पुरातन चीजें हमारे पास लौट नहीं पाती। हमारे आयुर्वेद हमारे पास अमेरिका के रास्ते होकर आएंगे, हमारी प्राकृतिक जीवन–पद्धति हम नहीं समझ पाएंगे, योग पर बाबा जी मुठिया रहे हैं। विज्ञान–तकनीक और दवाओं पर रिसर्च कर क्या मिलेगा–अमेरिका वह काम हमारे लिए जो कर रहा है। अतः बंधुओं! हम अपनो ने ही अपनी राज व्यवस्था, समाज व्यवस्था और अर्थ नीति की ऐसी तैसी की तो दोष किसका ? लंदन या जर्मनी ने आकर यह नहीं कहा की वेद मत पढ़ो, गांधी को नहीं मार्क्स को समझो। किसी ने अगर कुछ विचार दिए तो उस पर मीमांसा कर अमल में लाने की बजाय हमने उस विचार को किनारे लगाया। गांधी जी की मूर्ति स्थापित की और नोट पर छापे। उनके असली मंत्र को भूलकर... ।''

पुजारी जी ने मंदिर का पट खोला तो सांझ ढल जाने का एहसास हमें हुआ। पितामह भी ठहरे। हमने पंछियों के झुंड की उपस्थिति भी अनुभव की–उनका कर्णप्रिय संगीत! हम समझ गए आज बस इतना ही। पितामह उठ गए। हम सब भी। हमने पाया कि बैठे बैठे हमारे पांव अकड़ गए थे। समय कैसे बीता पता ही नहीं चला। पर आज की बात सुन हम कुछ बेचैन से थे। हमें और जानने की जिज्ञासा हो रही थी। हमारे बीच गांधी तो थे मगर गांधी जी को हम इस तरह कभी नहीं समझे थे। उनकी आर्थिक विचार भी इतने मानवीय और मौलिक थे। शायद क्रांतिकारी भी!

लघुकथा

मेकअप

किसी ने हवलदार जी से पूछा,–"क्यों साब, आपने यह खबर पढी कि नहीं, कि भ्रष्ट अधिकारियों को बर्खास्त कर दिया जायेगा ? अब आप क्या करोगे ?

महेश राजा,
वसंत–51, कालेज रोड
महासमुंद, छत्तीसगढ़
मो.–9425201544

चुटकी भर तंबाकू दाँत के नीचे दबाते हुए हवलदार जी इत्मीनान से बोले,–"सरकार का हुक्म सर आँखों पर। लेकिन बात यह है कि कोई तारीख भी तय कर दी जाती कि भई इस तारीख से कर रहे है तो थोडी सुविधा रहती। पिछला अगला सब मेकअप कर लेते।"

3–विचार मंथन

आज तीसरा दिन है। हमारी उपस्थिति पूर्ववत है। खैनी–चूना के चुटकी के साथ। अब भोगन पंडित या किसी को पादना होता है तो लोग हंसे नहीं, अतः बड़ा एहतियात बरता जा रहा है।

''असल में हमारे देश को विद्वानों या ज्ञानियों या शिक्षकों की आवश्यकता नहीं है।'' पितामह बोल रहे थे ''हमारे देश को आज औघरों की जरूरत है। जी हां, शमशान में जाकर धूनी जमाने वाले औघरों की। मुर्दों में भी अपनी सिद्धि सिद्ध करने वाले की। जानते हैं क्यों ? क्योंकि हम सब मुर्दा समान हो गए हैं। हम इतने पुरातन हो गए हैं कि हमें अपनी मृत्यु का एहसास तक नहीं। हम किस बात के लिए स्वयं को जीवित या जीवंत कहें। हमारा थोबड़ा तो खराब–सा कार्बन कॉपी है किसी का, इस बात के लिए ? कि इस बात के लिए कि सदियों हमारी मानसिकता गुलामों की रही है। हम सब बोतल के जिन्न हैं.....हुक्म करो आका...! सैकड़ों फिल्में बन रही हैं शायद ही कोई फिल्म हो जो मौलिक हो....पश्चिम के हॉलीवुड से प्रेरित ना हो। हम तो टाइटल तक अनुदित कर देते हैं.....एक कैप्शन तक हमें नहीं सूझता। टीवी के चैनलों को देखिए–सारे प्रोग्राम लगभग आयातित हैं। डांस प्रतियोगिता देखिए–आज का सच हिप–हॉप है। सर्कस! आप नकलची हैं और आप कहां से रचनाकार हो गए! कलाकार ? यही है जिंदा लोगों की निशानी ? क्या साहित्य, क्या कला, या संगीत! भला हो लोक संगीत का जिसने हमारी आबरू कुछ बचा रखी है। वरना दुशासन तो सारे कपड़े उतार ही दिए थे। भला हो लोक–बोलियों का, लोक–कवियों का, लोक–वाणी का, लोक–संस्कृति का.....!''

''हे औघरों! बनारस के तट पर क्या कर रहे हो....यहां सभी मृत है, इधर आओ! बहुत सारे ज्ञानी पिशाच अपनी ज्ञान –गंगा में डूबे–मरे जा रहे हैं। औघरों! तुम ही हमारी अंतिम आशा हो– तनिक इन्हें बताओ कि अपने शरीर की राख ही वास्तविक भस्म होता है, वही हमारी विभूति के काबिल है। यह शंकर की भूमि है–हम कहां भटक गए हैं!''

पितामह ठहर गए। वे कहीं खो से गए। जैसे वे यहां मौजूद ही ना हों। हमारे जेहन में उनकी बात सीधे–सीधे लगरही थी। हममें से यहां अधिकांश अपढ़ और मूर्ख थे –खेतिहर थे –पर पितामह की बात से प्रतीत होता था हम सब कुछ ना कुछ हजम कर रहे थे। लगता था ज्ञान की बातें मस्तिष्क से मस्तिष्क तक नहीं पहुंच रहे थी बल्कि दिल की

बात सीधे दिल में घुस रही थी।

पितामह वापस लौटे। वे कहीं गए नहीं थे –वे यहीं थे मगर खो गए थे। अब आगे क्या ? हम सोच रहे थे। पीपल का एक सूखा पत्ता तैरता हुआ पितामह के समक्ष आ गिरा। पितामह पत्ते को उठाए, मुस्कुराए– ''क्या यह पत्ता वापस इस वृक्ष का हिस्सा बन सकता है।'' हमने सर 'ना' में हिलाया। पितामह ने कहा–''नहीं! इस रूप में तो कभी नहीं। हां, इसका रूप बदलकर– आप सब किसान हो, खेतों की कटाई –निराई करते हुए जड़ों को यों ही मिट्टी में छोड़ देते हैं–कुछ दिनों में ही यह जड़ें सड़ कर वापस उसी मिट्टी में मिल जाती हैं और जब आप नई फसल उगाते हो तो उसके तत्व नई फसल के जीवन में काम आते हैं। यह एक पत्ता भी संभव है यहीं सड़ गल कर इस विशाल वृक्ष का पोषण बने। हां, अत्यंत अल्प, और इसके पोषण से पत्तों में जान आए। हमारे इतिहास में भी विचार इसी तरह आकर बूढ़े हो कर या असमय काल ग्रस्त हो जाते हैं। हम अपने गांधी जी के विचार को क्या कहें ? पर, संभावना तो है। यह जरूर है कि बिल्ली के गले में घंटी बांधे कौन ? इस रास्ते नहीं, किसी और रास्ते गांधी आएं। इसी तरह की उम्मीद मैं मार्क्सवाद से भी करता हूं। पर टूटे पत्ते सीधे अपनी कायनात का हिस्सा नहीं बन सकते–चेहरा बदल कर आना होगा। चेहरा बदलेगा कौन ? औघड़ विद्वान! क्योंकि समस्या, समस्या समझने से ज्यादा समस्या समझाने की है। और समझ! बड़ी मुश्किल सा शब्द है।''

''फिलहाल मैं उस मार्क्सवाद का संक्षिप्त इतिहास आपको बताना चाहूंगा कि इस साम्यवादी परिकल्पनावाली बात ने किस तरह सारी दुनिया को हिला रखा था। आज भी पूंजीवादी सरकार साम्यवाद के नाम से कांपती है। खैर!''

''जैसे प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति ने मार्क्सवाद की रसिया में स्थापना की और लेनिन इसके पहले लीडर बने, उनके बैनर तले विशाल रूस, यूनाइटेड स्टेट्स सोवियत रसिया (यूएसएसआर) विश्व का पहला मॉडल राज्य (संघ) बना। सुदूर साइबेरिया में कोयले की खदानें, पेट्रोल की संभावना और अन्य खनिज तत्व ढूंढ निकाले गए। जहां दैनिक तापमान साल के आठ–नौ महीने माइनस जीरो डिग्री हुआ करता था– वहां मार्क्सवादी सरकार ने श्रमिकों को उच्च सुविधाएं देकर अनछुए खजाने का दोहन प्रारंभ किया। क्याकोई पूंजीवादी राष्ट्र या कोई पूंजीपति राष्ट्र का पूंजीपति ऐसी विषम परिस्थिति में देश या समाज के भला की बात सोचता! वह क्यों समाज सेवा करने बैठा ? सुदूर क्षेत्र तक रेलवे लाइनें बिछी, बिजली–पानी और खाद की सुविधाएं पहुंचाई गईं। शहर बसाए गए। सार संक्षेप यह कि अपनी स्थापना के बाद से ही सोवियत रूस ने तरक्की प्रारंभ की। यह तरक्की कुछ अलग किस्म की थी– पैट्रोल या कोयले का खनन नहीं, कहीं से भी व्यापार की दृष्टि से (लाभ–हानि) लाभप्रद नहीं था। लेकिन सोवियत रूस ने लाभ–हानि से परे जाकर अपने लोगों (कामगारों) के जीवन यापन का ना केवल साधन जुटाया बल्कि आंतरिक उद्योग धंधों को आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाया। अब सारा यूएसएसआर लेनिन का था–साइबेरिया में होने वाली क्षति अन्य जगहों से पूरी की जा सकती थी। वही किया गया।''

''बेशक ऐसी सोच कोई पूंजीवादी राष्ट्र नहीं अमल में ला सकता। इतना ही नहीं रसियन वैज्ञानिकों ने परमाणु क्षेत्र में, अंतरिक्ष के मामले में, नौसेना और मिलिट्री हथियारों के मामले –लगभग सभी मामलों में विश्व का अग्रणी देश कर दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति ने तो रसिया की मुहर विश्व पटल पर स्पष्टतः लक्षित कर दिया। अमेरिका और रसिया के बीच सैद्धांतिक शीत युद्ध तो पहले से ही जारी था –द्वितीय विश्व युद्ध ने तो दोनों की प्रतिद्वंद्विता पूरी तरह उजागर कर दी। जहां–जहां अमेरिका अपने स्वार्थ के कारण अमेरिकी सैन्य अड्डा बनाते, रसिया भी पास ही अपनी सेना भेजकर जैसे चेतावनी देता–खबरदार!''

इन दोनों की लड़ाई का कारण ? दोस्तों! अमेरिका घोर पूंजीवादी राष्ट्र, वहीं सोवियत रूस पूंजीवाद विरोधी, साम्यवाद का समर्थक! सांप और नेवले जैसा संबंध!''

''वैसे तो मार्क्सवाद का योगदान समूचे ग्लोब पर लगभग 50–60 वर्षों तक छाया रहा। अमेरिका या लंदन जैसे पूंजीवादी देशों को भी इस सिद्धांत के कारण अपनी आंतरिक और बाहरी नीतियों में तब्दीली लानी पड़ी। मार्क्सवादी पार्टी की स्थापना सारे विश्व की राजनीति में अहम हो गई। बेशक सभी जगह पूर्ण सफलता नहीं मिली मगर इसने जनता की वकालत मार्क्सवादी नजरिए से करके राज व्यवस्था को प्रभावित करने की भरपूर कोशिश की। यह विचार अफीम की तरह प्रभावशाली सिद्ध हुआ। उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों का हक और बराबर की हिस्सेदारी, यह सोच ही सबसे चमत्कारिक थी। जिन श्रमिकों के काम के घंटे तय नहीं होते थे अब 8 घंटे से अधिक श्रमिकों से काम लेना गैरकानूनी हो गया, अतिरिक्त काम के लिए (ओ.टी.–ओवरटाइम) अतिरिक्त वेतन से दुगने पैसे जोड़े गए। श्रमिकों की स्वस्थ बस्तियां बसाई गई, हॉस्पिटल, सड़क, स्कूल और अन्य सुविधाएं दी गई। और ऐसा पूंजीवादी कंपनियों ने किया–लेबर एक्ट लगभग सारी दुनिया में लागू

किए गए जिसमें श्रमिकों की डिग्निटी और सुविधाओं पर विशेष बल दिया गया–यह सब क्यों ? मार्क्सवाद के विचारों के कारण ही। जिन मजूरों को मानव तक नहीं समझा जाता था उन्हें बराबर का हक दिलाकर यह आत्मसम्मान का भाव वापस लाना कि इस फैक्ट्री के तुम भी एक हिस्सेदार हो। मजूर झूम उठे–एक बाग नहीं एक देश नहीं, हम सारी दुनिया मांगेंगे....हम मेहनतकश इस दुनिया में....। अब फ्रांस का एक शोषित श्रमिक जर्मनी या पाकिस्तान के शोषित श्रमिकों के हित से एक समान भाव पर उतर आए। यह भाव नहीं रहा कि पूंजीपति मुंबई का है या जर्मनी का या श्रमिक रसिया का है या इंडिया का। मार्क्स के विचारों ने राष्ट्रीयता के भाव मिटा दिए। सारी दुनिया के श्रमिक एक हो गए –पूंजीपति तो अपने स्वार्थ के कारण पहले से ही एक अलिखित सूत्र में बंधे थे। अगर आकलन करें तो इस विचार ने हमारे अंधा युग (डार्क एज) के बाद मशीनों इत्यादि के अविष्कार ने जितना मानव जीवन को प्रभावित नहीं किया उससे कहीं ज्यादा अधिक श्रमिकों, गुलामों को जीवन दिया। मनुष्य जो मेहनतकश था उसे मानव समझा गया। मशीनों ने तो कहा कि हमें हाड़–मांस का समझा जाए –दूसरी ओर मार्क्सवाद ने बताया और एहसास करवाया की हाड़–मांस के प्राणी को मशीन न समझा जाए। मार्क्सवाद ने मनुष्य की गरिमा और मशीन के संचालन के बीच एक अलिखित घोषणा पत्र सारे विश्व को दिया। मशीन हमसे है, हम मशीन से नहीं। और इन मशीनों को चलाने वाले हाथ मानव के हैं –जीवंत इंसानों के। उनके लिए शिक्षा और स्वास्थ्य अहम है। न्यूनतम आवश्यकताओं की गारंटी आवश्यक है।''

पितामह थोड़ी देर रुके। क्षितिज की ओर नजर की। कुछ सोच रहे होंगे। भोगन पंडित अपने माथे का पसीना गमछा से पोंछ रहे थे। लगता है छुहारे का हलवा सब हजम कर गए थे। पितामह ने अपनी दृष्टि हमारी ओर की –''मशीनों की बात जब जब होती है मुझे गांधी जी की बात याद आती है। गांधी जी ने मशीन और मनुष्य के श्रम के बीच एक लक्ष्मण रेखा खींच रखी थी। पर मनुष्य अपने हवस के आगे कहां सुनता है, दोस्तों! यह दुनिया तो अंधे धृतराष्ट्रों से भरी पड़ी है और उदंड दुर्योधन नंगा घूम रहा है, वैसे परिपेक्ष्य में कहां कोई ठहरे और गांधी जी को सुने। समझे। फिलहाल, मार्क्सवाद ने तो इनकी पुंगी बजाई ही बजाई। यहां गौर करने वाली बात है या कहें एक सवाल है जो आप सबके बीच उठाना चाहता हूं कि जो मशीनें मानव जीवन की बेहतरी के लिए आविष्कृत हुए हैं वह मानव श्रम के अस्तित्व को ही खा जाती है ? कैसी विडंबना है! कहां वह बारीक–सा धागा है जो जंजाल बन कर अपने दाता के लिए भस्मासुर बन रहा है। यह आज भी दिखता है। चंद लोग, चंद कंपनियां बस यही कर रही हैं अपने लाभ के लिए दुनिया का मशीनीकरण कर रही है, पर्यावरण का संतुलन बिगाड़ रही है मगर इनकी सोच में कहीं भी कोई हाशिए का मानव नहीं है जो सर्वाधिक अपदस्थ है। लालच ? हवस ? अज्ञानता ? क्या वजह हो सकती है।''

''हमारी नैतिकता इतनी ऊंची नहीं कि गांधी की बात ये सुन समझ सकें। मार्क्सवादी श्रमिक एकता ही इन्हें ठीक कर सकता है। इस श्रमिक एकता यूनियन के प्रभावी विस्तार को रोकने के लिए पूंजीवादी कंपनियों ने दर्जनों हथकंडे अपनाए आउटसोर्सिंग, छोटी–छोटी इकाइयों का गठन, बड़ी फैक्ट्रियों की जगह अलग–अलग नामों से अलग–अलग कार्यालय और स्थापना इत्यादि खोलना जैसे हथकंडे जिससे कम श्रमिक हों और यूनियन कमजोर रहे। हवस के शिकारी कंपनियों ने फिलहाल तो बहुत सफलता पाई और पूरे विश्व में एक नए साम्राज्यवाद या उपनिवेशवाद को जन्म दिया। पहले जहां कंपनियां दूसरे देशों में घुसकर अपने लोगों से अपनों पर ही कोड़े बरसाए और हमारा धन तरह–तरह से निचोड़ा –आज इनका स्वरूप या चेहरा बदल गया है। मार्क्सवादी सिद्धांत सिर्फ एक मूक दर्शक भर रह गया है। पूंजीवादी घोड़ा बेलगाम है। बेतहाशा! ऊपर बताया ना कि विकास के नाम पर हमारे जैसे विकासशील राष्ट्र विश्व बैंक से कर्ज लेने या विश्व की कंपनियों को यहां दफ्तर खोल कर व्यापार करने की डील उनकी शर्तों के अधीन कर रही हैं। यह विश्व बैंक है क्या ? विश्व के चार पांच बड़े देशों का 90 प्रतिशत पैसा –और ये पैसा किसका –महान पूंजीपतियों का, जिनके पास अकूत खजाना है –जो राष्ट्र की नीतियों को अपने हित में प्रभावी करना खूब जानती है। सीधा सा मतलब है लूट जारी है। नाक इधर से नहीं तो उधर से पकड़ो। हमें कर्ज दिया कर्ज का पैसा विकास के नाम पर हमारे पास आया और हमने उसी पैसे से अपनी अर्जन शक्ति बढ़ाई –और माल किसका खपाया ? महान कंपनियों का! ले–देकर हम विश्व बैंक का ही पोषण कर रहे हैं –विश्व बैंक मतलब विश्व के पूंजीपति और मार्क्सवादी विद्वान चुप हैं। मार्क्स की व्याख्या करें तो कैसे करें!''दोस्तों! क्या हम अपने पांव पर खड़े हैं ? क्या सचमुच हम आत्मनिर्भर हैं या इस रास्ते आत्मनिर्भर हो सकते हैं ? आखिर इसका अर्थ क्या है ? कहीं तो एक लक्ष्मण रेखा खींची होनी चाहिए। अब तो दिन दूर नहीं जब मिट्टी, पानी, आकाश सभी पूरी तरह प्रदूषित न हो जाए। मानव अस्तित्व ही

खतरे में पड़ जाए। प्रकृति द्वारा चेतावनी लगातार मिल रही है। मगर हम अचेत हैं। यह बिना सिद्धांत वाला अफीम है –इसका कोई माई बाप नहीं। दिशाहीन समय। दिशाहीन सच। दिशाहीन सोच। यह कैसा अंधा युग है! महाभारत में एक ही था धृतराष्ट्र यहां तो अंधों की फौज दिख रही है।''

''दोस्तों! हम इसलिए औघरों का आह्वान करते हैं कि जो दुनिया को बताएं कि अपनी मिट्टी, अपनी चमड़ी के भस्म को ही विभूति बनाए बगैर हमारी मुक्ति नहीं। कहीं तो रास्ता देखना होगा –बुद्ध की तरह अपना दीपक आप बनकर –बुद्ध के रास्ते मध्यमार्गी बनकर या अन्य रास्ते से। हमारी विरासत ने तो हजारों साल से हमें सब कुछ दिया –ज्ञान, मार्ग, दिशा सबकुछ! पर हम गुलाम भी ऐसे हुए कि लंदन–अमेरिका के अलावा कुछ दिखता ही नहीं। ये घूंघट के पट भारतीय और भारतीय विद्वान कब खोलेंगे! अपने पांव पर चलना कब सीखेंगे। विदेशी वैशाखी का सहारा कब छूटेगा ?''

भोगन पंडित कह रहे थे–''जरा सोचिए, ज्ञान की गंगा कहां–कहां प्रवाहित हो रही है। कहां गांधीजी का चरखा और कहां विश्व बैंक। कहां कंपनियों की लूट और हमारी दासता! क्या कभी सोचा था कि इतना जटिल रिश्ता भी हो सकता है।''

''ठीक कहे पंडिजी! हम का जाने–केहू नृप होए का मतलब।''– धूरंधर अहीर खैनी घिस रहे थे।

''बाकी अब तो समझना पड़ेगा। बे–समझे हम गुलामे बने रहेंगे। कब–तक नाली के कीड़े जैसा बजबजाते रहेंगे।''–घीसू विश्वकर्मा बोले। उनकी बात सुनके बिलार सिंह चिक् दे खैनी थूके और बकरने लगे–''बिल्कुल ठीक! अगर तरक्की असली चाहिए तो विचार भी असली चाहिए। हम सब अपढ़ हैं, मगर पितामह की बात कितनी सच्ची लग रही है।''

''इसका का माने हुआ रे.....मतलब यही निकला ना कि हम लोग मूरख–मुसटंडे रह गए – और मलाई कोई और खा रहा है। सदियों से इहे हो रहा है।''– भोगल खैनी मुंह में दबाए।

''बाकी उपाय क्या है अब तो पितामह ही बताएंगे।''–भीखू पहली बार बकरे। और पितामह की बात सारी दुनिया मान लेगी, है नू.....बुड़बक हो.... ।''– बिलार सिंह खैनी के रंग में आ गए थे।

''तो पितामह की बात नहीं सुने... मात्र दो लोगों का विचार –मार्क्स और एंगेल्स ने मिलकर दुनिया को कैसी सौगात दी। यहां तो हम सब साथ हैं।''–धूरंधर अपना विचार प्रेषित किए।

''पर मार्क्स–एंगेल्स का देश पढ़े–लिखे लोगों का देश था। छोटा देश था। हमारी तरह भिन्न जाति–संप्रदाय में दुनिया उनकी नहीं बंटी थी। उनका देश हमारे देश से एकदम अलग। हम अनपढ़। गुलाम।'' –भोगन

''ए भोगन भाई! आपकी बात सोलहो आना सच! मगर अब इस सच को बदलना होगा। कल का सच आज का सच कैसे बन जाएगा। दुनिया कहां से कहां चली गई।ठीक कहे नू...?'' –धुरंधर बोले।

''अब तो सच का सत् जो निकले, पितामह ही बताएंगे, हम क्या बताएं। इतना ज्ञानी–मानी लोग हैं इस संसार में, उनको क्या यह सच नहीं दिखता!''–भीखू।

''खूब दिखता है। जैसा सच धृतराष्ट्र को दिखता था ना, वैसा ही सच। अपना नीहित स्वार्थ। और ये लोग ही शक्तिशाली हैं।''–भोगन।

''और हम लोगों की शक्ति दीन–हीन हो गई। हम बिखरे पड़े हैं। यूनियनबाजी खतम। मजूर एकता जिंदाबाद महज नारा बन कर रह गया!''–बिलार सिंग बोले।

''चलिए अंधेरा घिर रहा है। बात तो दूर तलक जाएगी शायद कभी खत्म ना हो। गरीबों का नियति ही ऐही है मर्दे कोइयो युग हो–भुगतना उन्हीं को है। बीच में कोई संत या मसीहा आता है –पर हम वहीं के वहीं वापस लौट आते हैं जहां से चले थे।''–भोगन दार्शनिक अंदाज में बोल रहे थे।

''चुप रे पंडितवा! खाली पोथी–नियति के बात करता है। जंजीर तोड़ेगा तब नू टूटेगा।''– धुरंधर बिगड़ गए।

''तू ही तोड़ेगा जंजीर! अकेले कबार लेगा क्या ? आएं. ...!''– बिलार सिंग का लहजा गरम था।

''काहे गरमिया रहे हैं बिलार भाई....इहां तो डिकससन (डिस्कशन) नू हो रहा है। बाते–बात से नू बात निकलती है सोचिएगा नहीं तो ब्रेनवा जम नहीं जाएगा।''– भीखू।

''हां, तू सोच भीखू। ब्रेन को जमने मत दो।''

''ऐ बुड़बक सब! ऐही एकता देखाओगे तुम लोग। बात के तह तक तो पहुंचने का कोशिश करो।''–भोगन।

''हम का सोचे खेतिहर सब! विद्वान लोग क्या कर रहा है ? पोथी–पुरान लेकर!''– बिलार।

''ऐसे सोचने से काम नहीं चलेगा। कब तक अंगूठा कोरे कागज पर मारते रहोगे। है कि नहीं भोगन जी.... ।''

''एकदम सही... । कहीं से तो सुरुआत करें के पड़ी।''– बीसू।

4–सिद्धांत और व्यवहार

चौथा दिन–

''आप सबके जेहन में सवाल आया होगा कि जब हमारे बीच इतने पंडित, संत और ज्ञानी मौजूद रहे हैं और हमारा रास्ता भी बताते रहे हैं तो बावजूद इन सबके मानव जीवन का अधिकांश हिस्सा असंतोष, भेदभाव और जीवन से जूझते हुए बीतता है। क्यों ? क्यों गांधी या बुद्ध या जैन या वेद की तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता या मार्क्स जैसा मानव हित चिंतन करने वाले की अनदेखी होने लगती है। मतलब कि मानव संस्कृति–सभ्यता पर लालच, भ्रम और भ्रामक ख्वाब हावी हो जाते हैं। जिस स्वप्न को मार्क्स ने हकीकत में बदलने का रास्ता दिखाया, वहीं उसी स्वप्न को दिवास्वप्न बनाकर पूंजीपतियों ने मानव हवस को घी की आहुति दी।''

''यदि आप मुझसे एक शब्द में पूछे तो इस दुनियावी विडंबना, भेदभाव और शोषण का वास्तविक कारण क्या ? मैं कहूंगा–मानव तृष्णा! लालच–लोभ! इस तृष्णा भाव ने सदियों से मानव इतिहास को प्रभावित किया है। महाभारत काल से लेकर आज तक। थोड़ा प्रसंग से हटते हैं और एक पौराणिक कथा को सुनाते हैं। प्रसंग रामायण का है–इस कथा को विद्वानों ने अपनी–अपनी रचना में विविध नजरिए से बातें ढूंढी है।''

हनुमान कथा प्रसंग आते ही हमारे चेहरे आगे की ओर झुक गए। चाव तो पहले से ही आ रहा था अब समझिए दाल में तड़का लग गया। भोगन पंडित हलुवा खा कर या भीखू पहलवान सतुआ अचार पचाना और पादना भूल गए।

''हनुमान जी समुद्र पार कर रहे थे। मार्ग में सुरसा नाम की राक्षसी ने उनका रास्ता रोका। उसने कहा वह भूखी है और हनुमान जी को अपना आहार बनाना चाहती है और हनुमान जी ने विनय पूर्वक तर्क दिया कि वह 'राम–काज' में लगे हैं अतः उनका कर्तव्य पूर्ण होते ही वह उसका 'आहार' बन जाएंगे। मगर सुरसा ने तर्क दिया कि एक भूखे की भूख मिटाने से बढ़कर कोई बड़ा धर्म नहीं हो सकता, चाहे वह 'राम–काज' ही क्यों ना हो। हनुमान जी समझ गए कि यह सुरसा की भूख राक्षसी रूप लेने वाली है। ऐसे नहीं मानने वाली। हनुमान जी ने बड़ी चतुराई दिखाई। जब वह उन्हें निगलने के लिए मुंह फाड़ती, हनुमान जी अपना कद उतना ही विशाल कर लेते जिससे वह उन्हें निगल न पाती। देखते देखते सुरसा ने अत्यंत विशाल सा मुंह फाड़ा। वह मुख जो भूखा था अपने आहार के लिए। हनुमान जी ने चट् से अपनी काया लघु की बिल्कुल मक्खी समान और सुरसा के मुंह में जा घुसे, और तुरंत वापस! हनुमान जी ने विनम्रता पूर्वक कहा – लो! वे उसके आहार बन गए, एक भूखे का मान रखा। हवन के हविश बन गए, अब उन्हें राम–काज की आज्ञा दें। सुरसा हनुमान की इस चतुराई, भूखे के प्रति उनके दृष्टिकोण की प्रशंसा की और उनके लिए सफलता की कामना प्रेषित की।''

''प्रसंग यहीं समाप्त हो जाता है मगर अर्थ के नए–नए परत खुलते हैं। महाकवि ने भूख की महत्ता और भूख के प्रति प्राणियों के पहलू को उच्च गरिमा प्रदान की है। यह निश्चित है, साथ ही क्या सुरसा का विशाल होता जाता भूखा मुंह उसके भूख या कहें उसकी तृष्णा–लालच का प्रतीक नहीं! लालच और जरूरत में बहुत बारीक फासला होता है। वह यहां दिखता है। लालच कब हवस में बदल जाए –मालूम ही नहीं चलता। दूसरी ओर विशाल मुंह और भक्ष्य का अत्यंत छोटा बनकर तृप्त करना –अर्थात यह कथा यह भी संकेत करती है कि अगर थोड़े में हमारी भूख शांत नहीं होती तो शायद यह कभी शांत होने वाली नहीं। मुंह फाड़े जाएगी। तृप्ति मामूली सी चीज से हो सकती है। कथा एक है मगर एंगल अनेक.....। मैं आप सब पर छोड़ता हूं कि आप इस कथा में क्या देखते हैं।''

पितामह रुके। एक गिलास पानी पिया। खैनी–चूना चीनी की ओर बढ़ाए। मतलब घीसो आराम से –कड़क खैनी बनाओ। देखते–देखते भीखू और बिलार सिंग भी आपन–आपन पोटली खोल लिए।

''फिलहाल, इस प्रसंग को पीछे छोड़ते हैं और इस बात की पड़ताल करने की कोशिश करेंगे कि इसी लालच ने, मानव हवस ने किस तरह मार्क्स को पीछे धकेल दिया या गांधी को अमल में नहीं आने दिया।''

''किस तरह ?'' हम सबके मन ने एकबारगी सवाल किया।

अब तक आस–पास के गांवों में भी पितामह की बातों का चर्चा होने लगी थी। लोग चर्चा करते और सुनकर उत्सुक हो चौपाल में शरीक होते। आस–पास के पढ़े–लिखे विद्यार्थी भी पहुंचने लगे थे। इसका यही अर्थ था कि पितामह की बातें सुनी और समझी जा रही है। लोगों में उत्सुकता है। वे शायद पूरी तरह ना सही मगर कुछ तो हासिल कर रहे हैं।

पितामह आगे बढ़े–''तो हम कह रहे थे कि इतने अच्छे विचार क्यों नहीं टिके ? क्या कमी रह गई थी ?''

''पहली बात तो यह कि कोई भी भाव या भाव से उत्पन्न विचार अपने देश, काल और परिस्थितियों की उपज होती है। मार्क्सवाद भी इसका अपवाद नहीं था। मैंने पहले ही बताया है कि किस तरह किन परिस्थितियों ने मार्क्स के हृदय को छुआ। श्रमिकों के शोषण ने उन्हें सोचने पर विवश किया और परिकल्पनाएं की। सिद्धांत गढ़े। जैसे ही परिस्थितियां अनुकूल हुई –आम आदमी की मेधा बड़ी खराब होती है –वह भीड़ की शक्ल में विचारहीन हो बिछड़ने को हमेशा तत्पर रहती है। वह अपनी पूर्व दशा से कुछ सीखता नहीं, बल्कि वह

आसमान और आसमान के तारे देखने लग जाता है। आम श्रमिकों ने अपनी उपलब्धि कम और भविष्य अधिक निहारने लगे। वह जाने–अनजाने अपने सीमित साधनों से आगे आने के सपने देखने लगे। दो कमरे का घर, आठ घंटे की ड्यूटी, स्कूल, स्वास्थ्य, स्वच्छ भवनों की रिहाइश, अब सामान्य सी बात लगने लगी थी। यह तो जैसे उनके अधिकार में सदियों से थे। उनके मूल्यों का आकलन आमजन कहे जाने वाले श्रमिक या निम्न मध्यवर्ग का या मध्यम वर्ग के लोग नहीं कर पाए। ये कोई ऐतिहासिक त्रुटि नहीं थी –यह आवाम कहे जाने वालों की मेमोरी का सवाल था। ये क्षणों में जीते हैं –ये तब–तक विचार करते हैं जब–तक इनके मस्तक में ठूंसा ना जाए। ये अपनी लाचारी के लिए सच पूछो तो स्वयं ही जवाबदार होते हैं। कई बार ये अपनी स्थिति सुधारने के प्रति लापरवाह होते हैं या सुधारना ही नहीं चाहते। हमेशा किसी मसीहा की प्रतीक्षा में बैठे। अपने कर्म को नियति माने बैठे। ये भीड़ जब तक यह ना समझेगी कि भीड़ लोगों की एक इकाई भी है –जिसका सार्वजनिक उतना व्यक्तिगत भी, जितना समष्टिपरक उतना व्यष्टिपरक भी –तब–तक वह स्वयं के प्रति न्याय नहीं कर पाएगी। स्वयं को भेड़िया धसान विचारों में डूबा देनेवाले ये आम लोग स्वयं का निजी अस्तित्व समझे –और इस बात को हर उस शख्स को समझना होगा। जो बात स्वयं समझनी है उसे बाहरी व्यक्ति कैसे समझाए? समस्या यही है– यहां घंटी बिल्ली के गले में नहीं, बल्कि अपने गले में लटकानी है। हमेशा इंकलाबी अंदाज में नहीं जिया जा सकता। सतर्क और खुली प्रज्ञा के साथ ही बेहतर जीवन हासिल की जा सकती है –और यह बात हम सब पर लागू होती है।''

''हम कमियां सिद्धांतों में निकालते हैं – पर अपनी नहीं। सच तो यह है कि मानव मन को उद्वेलित करने वाले विचार देश–काल–परिस्थितियों के परे नहीं होते, चाहे बौद्ध दर्शन हो, चाहे जैन, चाहे ओशोवाद या और कोई धर्म या संप्रदाय – हमेशा तलवारें म्यान से निकली नहीं रह सकती। तीर हमेशा धनुष पर तना नहीं रखा जा सकता। क्रांतिकारी विचार भी ऐसे ही तनी हुई तलवारों की तरह होते हैं। चाहे राष्ट्रीयता का भाव हो या ना हो श्रमिकों का अंतरराष्ट्रीय यूनिटी हो –सबका प्रतिफल वही होता है। मार्क्सवाद के साथ भी वैसा ही हुआ। आलोचक आलोचना करते हैं कि मार्क्स ने मानव श्रमिकों को एक साइको–बेइंग अर्थात् हाड़–मांस का वैसा पुतला जिसमें लालच जैसी चीज पनप सकती थी –उसे अनदेखा किया। श्रमिकों को एक लेवल के तहत 'वर्ग' में फिट कर दिया। समाज को वर्गों में विभाजित कर अनवरत संघर्ष का मैसेज तो मार्क्स ने दिया मगर इस स्थिति पर नजर नहीं डाल पाए कि जब वर्ग संघर्ष कमजोर पड़ जाएगा तो यही श्रमिक वर्ग आगे क्या करेगा। और वही हुआ। श्रमिकों–मध्यम वर्ग में भ्रष्टाचार धीरे से प्रवेश किया। इधर पूंजीपतियों की जगह स्टेट कैपिटलिज्म ने ले ली। अर्थात जिस प्रकार एक पूंजीपति किसी ना किसी तरह 'लाभ–हानि' में बही–खाते में जीने को विवश थे, वही विवशता मार्क्सवाद प्रेरित राज्यों ने भी महसूस की। मार्क्सवादी राज्य एक ओर अपने श्रमिकों–कर्मचारियों के लिए एक आदर्श जीवन–सुविधा मुहैया कराने को प्रतिबद्ध थे तो दूसरी ओर उनके सामने वित्तीय घाटे (financial losses)जैसी समस्या मुंह बाए खड़ी थी, उसपे भीतर ही भीतर पनपता भ्रष्टाचार! जिस भी अधिकारी, कर्मचारी, निगम या निकायों को मौका मिला उसने सार्वजनिक सम्पत्ति को क्षति पहुंचाई। चोरी, रिश्वतखोरी, कमीशन खोरी जैसी –आम समस्याएं यहां भी देखने को मिली। और व्यापक पैमाने में सुविधाओं का सभी ने कमोबेश दुरुपयोग किया। नतीजा यह हुआ कि भारी निवेश जैसे सड़कें, रेलवे लाइन, स्वास्थ्य इत्यादि क्षेत्रों में राज्य के वित्तीय घाटे लगातार दबाव बनाते गए। विदेशी पूंजी कमजोर पड़ा। आयात निर्यात संतुलन बिगड़ गया। सरकार के पास आयातित सामग्री के मूल का कर्ज चुकाना तक मुश्किल होने लगा। वैसे में स्टेट जो समस्त उत्पादों पर नियंत्रण रख रही थी –दुविधा में पड़ गई थी कि मार्क्सवादी श्रमिक–कर्मचारी सुविधाएं दी जाए या राज्य की बड़ी योजनाओं में निवेश किया जाए। निवेश के लिए पैसे नहीं और मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार निवेश हेतु प्राइवेट कंपनी/पूंजी के बारे में सोचा तक नहीं जा सकता था। दोस्तों! चाहे कारण और भी कितने हो, दोष किसी का हो, नतीजा यही निकला कि राज्य अपना आर्थिक संतुलन खो बैठे। राज्य 'घाटे की वित्त व्यवस्था' कब–तक करती। सफेद हाथी खाते बहुत ज्यादा और हगते कम। मार्क्सवाद का सफेद हाथी उन महावतों को भी खूब निखारा।

मार्क्सवादी उत्पाद पूंजीवादी उत्पादों की तुलना में महंगे साबित हुए और बाजार में टिक नहीं पाए। अर्थव्यवस्था का एक दुष्चक्र प्रारंभ हुआ –ऐसा दुष्चक्र जिससे निकलने का रास्ता नहीं। लेनिन जैसे महान नेता के समय ही सोवियत रसिया को भारी निवेश हेतु पूंजीपतियों की आवश्यकता आन पड़ी। अपने प्रथम मार्क्सवादी नेता के कार्यकाल में ही मार्क्सवादी विचारों से विचलन किसी भी मार्क्सवादी विद्वानों को हजम नहीं हुआ। लेनिन की आलोचना भी की गई। आलोचकों ने तो इसे स्टेट कैपिटलिज्म के साथ–साथ सिद्धांतों के साथ तानाशाही, 'राह से भटकाव', पूंजीवाद की ओर इत्यादि शब्दों से विभूषित किया। तब लेनिन ने अपना पक्ष रखते हुए उसने बड़ी स्पष्टता से यह कहा कि इस कदम से मार्क्सवाद कमजोर नहीं बल्कि और मजबूत होने वाला है।

उसने बताया कि स्टेट ने आखिर ऐसा क्यों किया। और उसका यह नारा मार्क्सवादी विचार के इतिहास में बड़ा मायने रखता है जब उसने यह कहा कि– 'हमें एक कदम आगे बढ़ने के लिए कभी–कभी दो कदम पीछे की ओर लौटना पड़ता है।''

''लेनिन के इस ऐतिहासिक कमेंट में बड़ी सच्चाई छिपी है। एक ऐसी सच्चाई जो सिद्धांतों और व्यवहार के अंतर को तो साफ–साफ दिखाता ही है, उसके इंटेंशन को भी स्पष्ट करता है। लेनिन कहीं से भी पूंजीवाद का समर्थक नहीं था, वास्तव में उसके पास जो विकल्प उस वक्त मौजूद थे –वे देश–काल परिस्थितियों के सापेक्ष थे। उनकी मीमांसा हम आज या अन्य या मात्र मार्क्सवादी ग्रंथ के नजरिए से नहीं कर सकते। क्या मार्क्स ने कभी अपने 'वाद' में भ्रष्टाचार के आमंत्रण को प्रोत्साहित किया ? क्या मार्क्स ने कभी माओ या तावो को कहा या कहीं अपने सिद्धांत में लेखबद्ध किया कि सत्ता के लिए बंदूक उठाओ। नहीं!''

''दोस्तों! एक कदम आगे और दो कदम पीछे चलते हुए मार्क्सवाद स्टालिन के हाथों में पहुंचा। स्टालिन ने मार्क्सवादी विचारों को लागू करने के लिए लगभग तानाशाहों जैसा व्यवहार किया। अपने से विरोधी विचारधारा या स्टेट की नीतियों की आलोचना करने वालों साहित्यकारों, पत्रकारों का दमन प्रारंभ किया। विरोधियों को सुदूर साइबेरिया भेजा जाने लगा। और यह व्यापक पैमाने पर हुआ। स्टेट ने शोषण का एक दूसरा शक्ल अख्तियार किया। मालूम कि मार्क्सवाद जैसे विचार पढ़े लिखे लोगों के बीच बौद्धिक होने के कारण ही फलित हुआ –ऐसे विचार हमारे मुल्क में क्या हश्र पाते हैं आप देख चुके हैं। पर पूर्वी यूरोप और यू.एस.एस.आर. के शिक्षित लोगों के बीच विचार द्वारा विचार का खंडन–मनन चाहे जिस कोण से किया गया होगा – सत्ता ने (स्टालिन) स्वयं पर एक प्रहार समझा और भीतर–भीतर सत्ता ने वे सारे दमन के रास्ते अख्तियार किए। आम जनों ने इसे स्पर्श किया। देखा, सुना, समझा। सच आखिर सच होता है –एक नए तानाशाही से जनता विभ्रम में आ गई। मार्क्सवादी कल्पना बहुत पीछे छूट गया। लेनिन की स्वीकारोक्ति तो आलोचकों ने क्षम्य भी कर दिया पर इस नई तानाशाही से आम लोगों को भीतर ही भीतर अवश्य झिंझोड़ कर रख दिया होगा। और ऐसी तानाशाही दुनिया में जगह–जगह देखने को मिली। श्रमिक यूनिटी के नाम पर मिलों के लंबे हड़ताल –इतनी व्यापक मांगें कि मिल मालिक का कमर ही टूट जाए और फैक्टरी बंद करनी पड़े।''

''इस तथ्य को एक उदाहरण से समझिए''–पितामह थोड़ा रूके। समझ गये खैनी ठोंके का टाइम आ गया। मौके का फायदा सब ने उठाया। कुछ उठकर लघुशंका निर्मूल किए। संध्या बेला करीब थी। सूरज अस्त हो चुका था। आरती का समय भी बहुत दूर नहीं था। हम पितामह की प्रतीक्षा करने लगे।

''तो हम यह बताना चाह रहे थे कि सत्ता हो या व्यक्ति जब अपनी बात पर अड़ जाए और शक्ति का प्रयोग संतुलन से अधिक अपना पक्ष रखने में करने लगे तो समझिए तानाशाही का सुंदर नमूना है। स्टालिन तो यह नमूना पेश कर रहे थे –मार्क्सवाद के भीतर बहुत सारे अर्द्धज्ञानी सिद्धांत वादी नेता भी प्रगट हो गए जिन्होंने तानाशाही का रास्ता अपनाया। उदाहरण स्वरूप लीजिए फैक्टरी के यूनियन नेता का। स्टेट चाहे पूंजीवादी हो या मार्क्सवादी –मार्क्स के प्रभाव में सारी दुनिया में श्रम कानून, श्रम संगठन और यूनियन नेताओं को वैधानिकता करार की गई। इसका सीधा मतलब था यूनियन के नेताओं के मार्फत पब्लिक ग्रीवांसेज (श्रमिकों, आम लोगों की शिकायतें, सुझाव, सुविधाएं इत्यादि) फैक्टरी के मैनेजमेंट से मिलकर सुलह–शांति कराना इन का दायित्व था, इसे कानूनन मान्य भी किया गया, यहां तक कि हड़ताल पर जाना काम ठप्प करना भी इसमें शामिल कर लिया गया था। यह अधिकार क्यों ? क्योंकि श्रमिकों की जायज मांगें अनदेखी ना रहे। उन्हें उनके अधिकारों से वंचित ना होना पड़े। पर व्यवहार में कुछ ऐसे यूनियन के नेता देखे गए कि यों तो वे मैनेजमेंट के समक्ष पूरी तरह घुटने टेक दिए और एक तरह से मजूरों–श्रमिकों के हक नहीं दिलवा सके। दूसरी ओर ऐसे भी यूनियन नेता हुए जो श्रमिकों के नेता होने के जुनून में मैनेजमेंट की समस्या नहीं सुन पाए और अनवरत लंबे हड़ताल, काम रोको इत्यादि अवरोधों–हथकंडों का ऐसा इस्तेमाल किया कि फैक्टरी ही बंद करनी पड़ी। ऐसे दुनिया भर में सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। खुद अपने स्वतंत्र भारत में ऐसे खूब सारे उदाहरण मिल जाएंगे। दोनों ही स्थिति चाहे यूनियन का नेता मैनेजमेंट की ओर झुकता है और दलाली करता प्रतीत होता हो या श्रमिकों के जायज–नाजायज मांगों के समर्थन में खड़ा दिखता हो –क्षति मार्क्सवादी सिद्धांत की ही होती है। कभी भी ग्रंथ या सिद्धांत अपने आप में इस अर्थ में संपूर्ण नहीं होते –वे पूर्ण (परफेक्ट) होते हैं मगर एब्सलूट नहीं। उन्हें संपूर्ण करने की जवाबदारी हमारी होती है। हम पास होते हैं तो सिद्धांत की मान्यता बढ़ती है, हम फेल होते हैं तो सिद्धांत की बदनामी होती है। क्या बुद्ध ने कभी कहा था कि मेरे जाने के 500 या 1000 साल बाद बौद्ध धर्म के हजारों संप्रदाय तैयार कर लेना। और इसमें से सभी का वही दावा कि हम असली बौद्ध हैं। यह सच है या सत्य का विभ्रम! सच का विद्रूप!''

''दोस्तों! कंपनी का मालिक यूनियन से समझौता ना हो पाने की स्थिति में फैक्टरी लॉक कर देता है। क्या होता है हजारों स्थानीय मजदूर बेगार हो जाते हैं। उन्हें काम के लिए अतिरिक्त जगह तलाशनी पड़ती है। उस स्थान की क्रयक्षमता प्रभावित होती है। कंपनी के मालिक को क्या –वह भूखा तो मरेगा नहीं, कंपनी कहीं और स्थापित कर लेगा। और मार्क्सवादी इतिहास में इस तरह की विसंगतियां खूब मिली।''

''इस बात को कुछ अलग तरह से रेखांकित करते हैं फिर आज की सभा स्थगित।'' –पितामह बोले –''मान लीजिए किसी फैक्टरी में हड़ताल जारी है –महीनों गुजर गए –मैनेजमेंट और यूनियन के बीच समझौता नहीं हो पा रहा है। दोनों अड़े हैं। कंपनी का मालिक फैक्टरी बंद करने को तैयार है –मगर यूनियन की मांग स्वीकार नहीं। इधर यूनियन का नेता कहता है कि यह कोरी धमकी है, हम अपना हक लिए बिना पीछे नहीं लौट सकते!''

''अब यहां थोड़ा ठहरिये और विचार कीजिए –वर्ग संघर्ष का चरित्र (क्लैश) तो दिख रहा है मगर इसका अंजाम क्या हो ? मार्क्स ने क्या कहा, क्या नहीं कहा, क्या और क्या नहीं से परे दोनों पक्षों के बीच आपसी सामंजस्य ही मार्क्स का उत्स रहा है। आखिर मार्क्सवाद श्रमिकों का पक्ष लेकर उनके लिए एक रास्ता तैयार करते हैं –पर वही रास्ता यदि कहीं जाकर सिद्धांत के तानाशाह कहते हैं कि दो महीने और भूखे रहो –मैंनेजमेंट झुक जाएगी। पर ऐसा होता नहीं। और मार्क्सवाद का सारा ताना–बाना बिगड़ जाता है। बेबस श्रमिक मैनेजमेंट के आगे झुक जाते हैं, ड्यूटी ज्वॉइन कर लेते हैं –कुछ को कंपनी निकाल देती है, कंपनी अपनी क्षमता घटा लेती है या बाहर से श्रमिकों की आपूर्ति करने लग जाती है –या फिर करोड़ों की फैक्टरी ही बंद कर देती है। क्षति श्रमिकों और मार्क्सवादी सिद्धांत की अवश्य होती है। और यह लड़ाई सीधी–साधी नहीं रह पाती –गुंडे पाले जाते हैं –फैक्टरी में तोड़–फोड़, चोरी–डाका पड़ता है। मार–पीट और झगड़े होते हैं। अर्थात सिद्धांत से पूरी तरह विचलन!''

पितामह उठ गए। हम लोग भी। फिर आज की बात पर हम लोग चर्चा किए और अगले दिन की प्रतीक्षा में अपने–अपने घर निकल गए।

5–कुछ सवाल स्वयं से

मई का आखरी महीना चल रहा था। मौसम विभाग की भविष्यवाणी थी कि इस वर्ष बरसात अच्छी होगी। मानसून अपने निर्धारित समय से दो दिन पूर्व प्रस्थान कर चुका है। इधर एक–दो दिन पर बादल–अंधड़ छा जा रहे हैं गर्मी से राहत मिल रही है कहीं ना कहीं बूंदा–बांदी भी हो जा रही है।

मनुष्य के तन–मन पर प्रकृति का इतना सीधा और गहरा प्रभाव है –मजा यह कि हम उस ओर देखते –विचारते ही नहीं। जरा गौर कीजिए जब मिट्टी में पानी की चंद बूंदे गिरती हैं तो उसकी खुशबू! क्या उसकी तुलना किसी और से की जा सकती है। हमारे हक का सुगंध हमारे परिवेश से ही संभव है। अफसोस –जो सर्वसुलभ चीजें हैं उन पर हमारा ध्यान कहां जाता है।

मई का महीना हो और कोयल की कूक की बात ना हो। आम के बगीचे में पक रहे आमों की बात ना हो। लीची और जामुन, पेड़ पर लटकते कटहल की बात ना हो। तरबूजे, खरबूजे और खीरा–ककड़ी क्यों पीछे रह जाएं। प्रकृति ने प्रचुर हमारे लिए सौंप रखा है –बेल का फल और फलों का राजा आम! पर हम सबने शायद कहीं ना कहीं से प्रकृति के साथ छेड़–छाड़ की है। हाइब्रिड आम। छै महीने की चीजें तीन महीने में उगाई जाने लगी –फास्ट ब्रीड के लिए अतिरिक्त यूरिया का प्रयोग हुआ –मिट्टी की उर्वरता नष्ट हुई। पानी–जमीन एक समान दूषित हुए और दूषित हुआ हमारा शरीर! हम एक तरफ सभ्य सुसंस्कृत होते गए मगर और अधिक बीमार! हमने वही पाया जो हमने रोपा! आज फल और सब्जी खाना भी खतरे से खाली नहीं, कहीं का पानी पीना भी खतरनाक! आखिर ऐसा क्यों ? यह कैसा विकास ? जिसे देखो वही डॉक्टर की दवाओं पर टिका है। अभी तक तो हमारा मन ही बीमार था, अब मन के साथ शरीर भी बीमार हो चला है। हां, डाक्टरों की चल पड़ी है। दवा कंपनियों की निकल पड़ी है। कंपनियां विटामिन्स और प्रोटीन युक्त फूड तैयार करते हैं –आप कमजोर हैं डाक्टर आपको शक्तिवर्धक दवाइयां लिखेगा। सच का कैसा विद्रूप! जो वास्तविकता खाने–पीने की चीजों से सीधे प्राप्त होती है उसे मेडिसिन फार्म में घुटकना! हमारा शरीर इसलिए नहीं बना है –यह इस चूतियापा के लिए सदियों से तैयार नहीं है। लाखों वर्षों से मानव शरीर ने प्राकृतिक तरीके से 'सेल्फ हीलिंग' करते हुए, स्वयं को आज इस तरह तैयार किया है। मगर विडंबना क्या है –इधर कुछ पचीस–पचास वर्षों का

इतिहास ने ना सिर्फ प्राकृतिक दुनिया को तोड़–मरोड़ के रख दिया है अपितु हमने अपना प्राकृतिक संतुलन भी खो दिया है। नई–नई बीमारियां इजाद हो रही हैं। जिस की जड़ों तक हम पहुंचना नहीं चाहते। सिर्फ सतही रास्ते अख्तियार कर रहे हैं। आज खाद्य सामग्री अत्यंत दूषित है –यह लीजिए ये कहते हैं कि उनका मूंगफली और सोयाबीन का तेल असली है –खाक! सारे उत्पाद केमिकल्स द्वारा उत्पादित है। कोई बाबा कहता है मेरा घी असली है –दूध असली, गाय असली!

सच ? कोसों दूर!

हम बीमार हैं हमारे कुएं का पानी ही दूषित है। चारों ओर बस एक ही बात की होड़ –बढ़े चलो। सोचने –ठहरने की फुर्सत नहीं। मैं समझता हूं –यहीं ठहरने की जरूरत है। आखिर इतनी प्रगति किस काम की ? यही –बीमार संस्कृति का प्रसारण करने वास्ते!

आज संगोष्ठी का पांचवा दिन है और पितामह कुछ अलग हटकर बात करते प्रतीत होते हैं।

''इन सब चीजों पर प्रकाश डालने की गरज क्यों पड़ रही है –क्योंकि हम चाहे जिस 'वाद' से अपनी समस्याओं को देखें उनमें अपनी समस्या का हल ढूंढना होगा। हमें अपने वास्तविक समय में जीना होता है और महज यूनियन की बातें कहकर या स्त्री एजेंडा में भटकाकर किसी ग्रंथ या 'वाद' को जस्टिफाई नहीं कर सकते। और, आज की हमारी समस्या है हमारा पर्यावरण! हमारा परिवेश! और यह परिवेश किसी को भी बक्शने वाला नहीं।''

''हम यही बताना चाह रहे थे। मार्क्सवाद हो या गांधीवाद उसे आज से रू–ब–रू होना होगा। आज का सच ?''

लघुकथा–महेश राजा

शांतिपूर्ण

–"आप लोगो की तरफ कैसे रहे चुनाव ?"

एक मित्र मोबाइल पर दूर देश के अपने साथी से पूछ रहे थे।

–"लगभग शांति रही, बस....चार पांच लोग ही मरे। छिटपुट दंगे भी हुए। दो तीन बसे जलायी गयी। पर अब सब कुछ कन्ट्रोल में है।"

साथी का जवाब था।

6–आज का सच ?

आज पांचवा दिन है, पितामह को हम लोग सुन रहे थे –''किसी सिद्धांत या वाद के गुण दोषों की व्याख्या या विश्लेषण करना हमारा उद्देश्य नहीं। ये तो सिर्फ मील के पत्थर की तरह होते हैं जिसके सहारे हमारी सभ्यता –संस्कृति की यात्रा संपन्न होती है। यह रोड–मैप हैं। हम कब और कहां किस दिशा में मुड़ें। किसी 'वाद' या सिद्धांत ने हमारी संस्कृति को किस दिशा में मोड़ा, कैसी दशा दी ? सवाल यह भी है कि क्या वही यात्रा हमें फिर से दोहरानी है, क्या कल का सच हमारा आज का भी सच होने वाला है ? और वही 'वाद' वही सिद्धांत हमारा संबल बनने वाला है ?''

''जीवन, प्रकृति कभी कार्बन–कापी या फोटो कॉपी नहीं होते। इनके 'रिसायकल' होने का तरीका भी इनका अपना होता है। इसलिए हमने आज के सच को समझने का प्रयास किया है कि क्या जिस वाद पर बातें हो रही हैं वो हमारे किस काम की है ? इसका प्रयोजन आज के संदर्भ में ?''

''बड़ी फैक्टरियां लगभग बंद हैं। दुनिया से लेबर यूनियन भी एक दृष्टि में समाप्त प्राय है –तो क्या साम्यवाद का प्रयोजन समाप्त ?''

''दुनिया से चरखा आज म्यूजियमों में भी देखने को शायद मिले तो क्या गांधीवाद का कोई अर्थ नहीं ?''

''क्या दुनिया की राजनीति और अर्थनीति से पूंजीवाद का प्रकोप समाप्त हो गया कि समाजवाद की अवधारणा की जरूरत ही नहीं ?''

''क्या दुनिया और जीवन में नवीन समस्याएं आनी बंद हो गई कि सिद्धांतों/वादों और जीवन से जूझने के नये विचार पर विचार किया जाना हम बंद कर दें ? हम पीछे मुड़कर उन सीढ़ियों, उन पगडंडियों के मूल्य का आंकलन नहीं करें जिसके सहारे हमारी सभ्यता–संस्कृति आज इस मुकाम तक पहुंची है ?''

''इन अनेक सवालों को सिर्फ एक सवाल में समेटा जाए तो वह यही है कि चुनौती है। चुनौतियों का चेहरा बदला है। वह एक ही है मगर बहुरुपिए की तरह है। वह एक ही है– चंद लोगों का लालच! मानव हवस! वह हमसे दूर नहीं। कि हम चंद कारपोरेटों को गाली देकर अपनी भड़ास उतार फेंके। जी नहीं, वही हवस हममें में भी कहीं ना कहीं है –मौका लगते ही हम ही हैं जो चरखा छोड़ देते हैं, जंगल काट देते हैं, लाभ के लिए मिट्टी –पानी को प्रदूषित करते हैं। और सारी शिकायतें किसी 'वाद' या सिद्धांतकार पर डालते हैं। झूठ की अद्‌भुत सच्चाई है। सच की सच्चाई का तो पता नहीं, पर असत् अजीबोगरीब तरीके से अपने आप को सिद्ध कर रहा है। सच की सीढ़ी कमजोर और एकाकी–सा है।

असत्य की रेलिंग–पेलिंग देखिए....! देखते बनता है!''

''पर्यावरण के असंतुलन के बारे में न ही मार्क्स ने न ही गांधी ने सोचा था –पर उनकी सोच में इस धरती का कल्याण छिपा है। विकेंद्रीकरण साधनों का –दोनों ही चाहते हैं। जब धन का, स्रोतों का विकेंद्रीकरण हो जाएगा तो ज्यादा संभव है एक समकलन बिंदु स्वयमेव समाज/परिवेश में स्थापित हो जाएगा। पर, यह संतुष्टि स्तर, आदर्श स्थिति या समकलन बिंदु किसी पूंजीवादी सोच में नहीं आ सकती। यह ऐसा सच है जो सौ दफा झूठा होने पर भी सभी सच पर भारी है। यह है विडंबना.....! चंद इकाइयां चंद कंपनियां दुनिया लूट रही हैं। प्रकृति का निरंकुश दोहन कर रही हैं। और हम उनके अनुगामी बने हुए हैं। उनका पीछा कर रहे हैं। यही है विकास का रास्ता! वे सत्ताएं बदलते हैं –वे सत्ता से मनचाहे काम करवाते हैं और सबसे बढ़कर वे मानव सभ्यता को विकसित कर रहे हैं। मनुष्य को नई–नई ऊंचाइयों दी जा रही हैं।''

''सच और सच के विरूप में अंतर नहीं ?''

''चरखा भी सच है, पुराने कॉटन मिल भी सच हैं और अत्याधुनिक मिलें भी, जहां सिंथेटिक्स तैयार किए जाते हैं।''

''पर, क्या यह तीनों सच एक जैसे हैं ?''

''गन्ने की खेती कर गन्ने से खजुर–गुड़ बनाना, शक्कर निर्माण करना या आधुनिक मिलों से कार्बन युक्त शर्करा पैदा करना –क्या यह तीनों समान हैं ?''

''प्रश्न से प्रश्न निकलते हैं और जवाब ढूंढो तो सिर्फ एक ही मिलता है –मानव लालच! हवस!''

''और जो सबसे दूषित समूह है –मानव, वह एक मूक दृष्टा है। एक ऐसा गवाह जो चुपचाप उपभोक्ता बने स्वयं को देख रहा है। जीवन भोग रहा है। सच तो ये है कि उसे झूठ–सच की परख ही नहीं। लाचार है।''

''आम लोगों की लाचारी –जो किसी मसीहा के इंतजार में बैठे होते हैं –पूर्णतः दोषमुक्त नहीं कर सकते। इन्हीं आम लोगों में से कुछ खास लोग निकलते हैं और फिर अपनी सीढ़ी या उन पगडंडियों को भूल जाते हैं जिन पर वे कभी चले थे। पर, यह समस्या किसी एक समूह व्यक्ति या व्यष्टि कि नहीं है, यह कहानी संपूर्ण मानव समाज की है। संस्कृति का यही इतिहास रहा है। अंधकार से घिरा या अंधकार से जूझता!''

''कोई वाद क्यों बना ? कोई मसीहा क्यों पैदा हुआ ? मानव जीवन को दिशा देने के लिए और इतिहास गवाह है इतिहास में कई ऐसे दौर आए मगर वे सब समय सापेक्ष सिद्ध हुए। हमने ही फिर उनके मूल भाव, मूल स्वरूप को भुला दिया उनकी जरूरत ही नहीं पड़ी, वे आउटडेटेड हो गए!''

''पर, मानव जीवन की चुनौतियां कभी खत्म नहीं हुई। मेरा सच अंतिम सत्य जैसा प्रतीत होता है। वह आज भी है, कल भी था!''

पितामह ठहरे!

माहौल में सन्नाटा था। यह अलग किस्म का सन्नाटा था –शायद बौद्धिक सन्नाटा!

कुछ पल ऐसे होते हैं जब हमें ठीक–ठीक नहीं सूझता। हम किस रास्ते जाएं!

चरखा ?

मजदूर यूनियन ?

कोल्ड स्टोरेज ? धन और हाड–मांस सभी.....!

सॉफ्टवेयर क्रांति ?

माओवादी/ नक्सलवादी क्रांति ?

काव्य

कोई परचम

रोज़लीन
535, गली नंबर–7
कर्ण विहार, मरेठ रोड़
करनाल–132001
मो.–9467011918

.....प्रेम करते हो!
आकाश की हथेलियों में उछलते
रंगों के भुरभराते गुब्बारे
बरबस फूट पड़ेंगे
तुम्हारे चेहरे को छू कर;
टिमटिमाती आंखें अपलक निहारेंगी
निःशब्द शून्य में
उजास रश्मियां मस्तक पर आरूढ़
अट्ठखेलियां करेंगी
सतहों को फाड़कर निकला पलछिन्न
किसी सरगम के छल्ले छोड़ देगा
तुम्हारे चारो ओर
–अंधेरों की मोटी लीक ढह जायेगी
कोई परचम फहरायेगा गुनगुनाती हवा में,
शीशे के पारदर्शी महल से
कोई अजनबी
जानी–पहचानी आवाजों सहित
बांह फैलाये पुकारेगा तुम्हें
तुम खिंचे चले आओगे उस ओर
किसी सुषुप्ति में
शब्द नहीं उघड़ेंगे होंठों पर
.....बस मुस्कुराओगे तुम–
उस अवर्णनिय गंध के घेरे में

7–मानव बनाम प्रकृति

इस बौद्धिक सन्नाटे में मुझे प्रकृति और मानव के रिश्ते दिखाई दे रहे हैं। यह जितना सरल दिखता है, उतना है नहीं। लालच या हवस के कारण मानव किसकी क्षति पहुंचाता है –प्रकृति की या स्वयं की।

''जब हम सवालों से सवाल कर कर के गहराई में जाते हैं तो प्रतीत होता है –वह क्षति स्वयं की ही होती है। पर जब अहंकार या मूर्खता या हवस की पट्टी हमें दुर्योधन के अतिरिक्त और के बारे में सोचने दे तब ना!''

''मनुष्य और प्रकृति के रिश्ते तब से हैं जब मानव पृथ्वी पर आया। शिव एक ऐसी अवधारणा भी है –भावना के साथ–साथ प्रकृति और पुरुष का रिश्ता कैसा हो। आद्यपुरुष है जो प्रकृति के साथ भौतिक, मानसिक और आत्मिक हर रिश्ते के आदर्श स्वरूप को दर्शाते हैं। शिव जितने आद्य हैं उतने ही अत्याधुनिक भी! वे अस्त्र–शस्त्र निर्माण और युद्ध कौशल में अद्वितीय हैं, उनका ज्ञान अनंत है –रहस्यमयी! मगर उनकी जीवनशैली निहायत सरल, प्रकृति से मेल रखती। कोई इत्र या फुलैल नहीं, भस्म ही उनकी विभूति है, श्रृंगार है। क्या यह मिथकीय चरित्र हमारी संस्कृति की व्याख्या नहीं करता ? यह बताता नहीं कि पुरुष या मानव सभ्यता को किस दिशा गमन करना चाहिए ? प्रकृति के साथ उसके रिश्ते कैसे होने चाहिए ?''

''जिस तरह शिव समाज का सक्रिय समूह पुरुषों को कुछ संकेत करते हैं उसी तरह उनकी भार्या स्त्री के आम चरित्र को दर्शाती है। स्त्री अथवा प्रकृति मानव को सद्भावनापूर्ण सहयोग के लिए तत्पर रहती है, वह अंगीकार करती है, वह स्वीकार है –मगर अतिक्रमण के लिए नहीं! मानव सभ्यता विकास के नाम पर प्राकृतिक जीवन शैली से अतिक्रमण अथवा बलात्कार नहीं कर सकता। यह बलात्कारी जब–जब हावी होते हैं प्रकृति नष्ट होती है। मानव जीवन, हमारी सभ्यता और अंततः हमें भोगनी पड़ती है। चाहे पत्थर के मकान हों चाहे मिट्टी या लकड़ी के तैयार किए जाएं –मानव जब तक सृजन भाव में रहेगा उसका उद्धार होगा। प्रकृति और पुरुष का संतुलन कायम रहेगा –अर्थात मानव व परिवेश संतुलित रहेंगे –शैव की स्थिति रहेगी। संतुलन बिगड़ेगा –तबाही होगी –हाहाकार भीतर–बाहर अवश्यंभावी है।''

''शिव ने गणेश का सिर क्यों काटा? क्योंकि गणेश तब मात्र प्रकृति के एकांगी उत्पन्न थे। विवाद और युद्ध हुए और अंततः शिव को गणेश का सर धड़ से अलग करना पड़ा, पुनः गज के सर से जीवनदान! अर्थात गणेश अब प्रकृति और पुरुष दोनों से सृजित हुए। संतुलन कायम रहा!''

''इस धरती पर प्रकृति बनाम मनुष्य में कौन बड़ा ? स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाई जाती थी। मनुष्य क्या हमारे परिवेश को छेड़ सकता है ? कौन बड़ा ? प्रकृति या परिवेश जिसमें पलकर मनुष्य जीवन जीता है –विकसित होता है। या फिर मनुष्य –जो अपने कौशल से प्रकृति को ही उलट सकता है ?''

''ये सवाल बहुत पुराने पड़ गए और आज इनका रूप अत्यंत घृणित हो चला है। क्या यह कहने की आवश्यकता है कि हमें क्या और कितना अपने परिवेश से रिश्ता बनाना चाहिए ? हमें मालिक बनना है, स्वामी ? मगर कैसा ? या दास ? मगर कैसा दास ?''

''जवाब सीधा सा है –संतुलन!''

''क्या हमें इतना पिछड़ा सिद्ध करना है कि साधारण सी महामारी प्लैग या मलेरिया से हजारों कालग्रस्त हो जाएं ?''

''या इतना मालिकाना दावा ठोंकना है कि धरती के हर कोने को नागासाकी और हिरोशिमा बना दी जाए जहां आने वाला आने वाली पीढ़ियां कैंसरग्रस्त पैदा हो ?''

''जी नहीं! उत्तर एक ही है –संतुलन!''

''जब गांधी जी चरखे की बात करते हैं तो वे इसी संतुलन की ओर इशारा करते हैं। आप चाहे तो संपूर्ण गांधीवाद को इसमें समेट कर रख लें।''

''जब मार्क्स उसी संतुलन की खोज में लेबर यूनियन, मैनेजमेंट की बात करते हैं तो वे भी उसी संतुलन की और अग्रेषित हो रहे होते हैं। और इस धरती को 'स्वयं' के दीपक महात्मा बुद्ध ने तो साफ–साफ कहा –वीणा के तार इतना ढीला ना रखो कि उनसे आवाज ही ना आए और इतना ना कसो कि तार ही टूट जाए।''

''सिर्फ इसी सत्य की खातिर वे 12 वर्ष भटकते रहे ?''

''जाहिर है कि सत्य का मर्म बहुत गहरा है। यह वेद है। ब्रह्म वाक्य! अटल सत्य! मानव चाहे जहां पहुंच जाए वह इन सत्यों से विमुख होगा –उसकी क्षति होगी। जीवन–सत्य के प्रति उत्सुक समाज या व्यक्ति को निरंतर इन तथ्यों पर मनन करना चाहिए।''

''मनुष्य का प्रकृति को समझने, जानने की उत्सुकता, उतनी ही पुरानी है जितना स्वयं मनुष्य! आदि–मानव प्रकृति से भय खाता था। पहाड़ से भयभीत, पानी से भयभीत, बिजली–आंधी से भयभीत, आग से भयभीत!''

''जरा ठहरिये....., विचार कीजिए..... यह है मनुष्य मन पर उसके चित्त पर जाने कितने वर्षों तक राज करता रहा। हमारा चेतन–अवचेतन एक दुर्दम्य भय से भरा रहता होगा। फिर हमने घुटने टेक दिए। प्रकृति के इन रूपों में अपना भगवान ढूंढ लिया। भय ने भगवान पैदा किया –हमने प्रार्थना किए, जीवन के लिए इन के समक्ष गिड़गिड़ाया। वरुण देवता और जल के इंद्र देवता, अग्नि देवता..... और सूर्य, चंद्र तो देव थे ही।''

''कालांतर में मानव का भय स्वाभाविक हुआ और उसकी प्रार्थनाएं सुंदर विचारों में बदल गई, ऋचाओं में बदल गई। वेदों का जन्म हुआ। प्रकृति के साथ मानव का संबंध कुछ रोमानी और सहज हुआ। मनुष्य प्रकृति और उसके विभिन्न रूपों और तत्वों को समझने लगा।''

''लेकिन इस समझ में ये समझ कब आई कि प्रकृति के तत्वों को समझते–समझते उन तत्वों पर अधिकार प्राप्त किया जाए ?''

''रामकथा में सीता को मुक्त करने खातिर लंका गमन में समुद्र मार्ग में अमोध बनकर आता है। राम द्वारा जलनिधि से प्रार्थना की जाती है कि वे वानर सेना हेतु मार्ग दें। समुद्र जो प्रकृति का ही हिस्सा है –अपने स्वरूप में स्थित रहने को विवश है। राम को क्रोध आता है और वे जल को सोख लेने वाले शस्त्र का संधान करते हैं।

जल देवता त्राहिमाम् करते प्रगट होते हैं –राम की इच्छा, उनके संकल्प के समक्ष समर्पित होते हैं और समुद्र–मार्ग का रास्ता तैयार होता है।''

''प्रकृति के तत्वों पर मानव विजय की प्राचीनतम कहानी लगती है। जल का स्वभाव ऐसा है कि उसमें पत्थर या भारी पदार्थ डूब जाए। मगर राम के पराक्रम से और नल और नील की सहायता से, उनके कौशल से तथा शेष समुद्र के सहयोग से सागर पर पुल/सेतु बनाए गए। प्रकृति के मूल स्वभाव कि अग्नि अपना वास्तविक रूप अर्थात दाह शक्ति भूल जाए, पवन अपना स्वरूप कण–कण में व्याप्त होने का और विरल होने का भाव भूल जाए, धरती अपनी उत्पादकता समाप्त कर दे, आकाश अपना विस्तार खो दे तो क्या बचेगा ? प्रकृति के तत्वों का अपने मूल स्वरुप में स्थित होना ही हमारे अस्तित्व की गारंटी है।''

''राम का प्रसंग अपवाद है। राम अति मानव हैं और प्रकृति के तत्वों से परे हैं। राम का उद्देश्य भी कोई लंका के सोना खदान के लिए नहीं था, ना ही धन संपत्ति लूट कर लाना। वहां आदर्श था –हम सभी जानते हैं, अतः उनके उद्देश्य में प्रकृति ने भी साथ दिया। यहां मानव–कर्म प्रकृति का मास्टर साबित होता है। पर मनुष्य और प्रकृति का संतुलन नहीं बिगड़ता। उद्देश्य में आदर्श है, मर्यादा है।''

''प्रकृति को वश में करने का महाभारत में कई–कई प्रसंग आते हैं। अगर कृष्ण के चमत्कारों को छोड़ दें तो सबसे सुंदर उदाहरण ऋषि दुर्वासा हैं जिन्होंने प्रकृति के तत्व को अधीन करने की शक्ति प्राप्त की थी। वरदान स्वरूप प्रसन्न होकर कुंती को उसकी कौमार्य अवस्था में ही वो मंत्र दिया कि जिस देवता का मंत्रोच्चारण का आह्वान करेगी –उससे संतान की प्राप्ति होगी। बाल जिज्ञासावश कुंती ने आकाश में सूर्य देव को ही ध्यान कर मंत्र पढ़ लिया और कर्ण की उत्पत्ति हुई।''

''परिणाम क्या हुआ ?''

''प्रकृति विरुद्ध कुंती ने कर्ण को अपने कान से जन्म दिया। कुमार अवस्था में पुत्र की माता होने के कारण लोक लाज के डर से करण का त्याग करना पड़ा। दरअसल, कर्ण का समस्त जीवन प्रकृति के तत्व से असंतुलित तरीके से प्राप्त वरदान का लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है।''

''देखा जाए तो मंत्र या अन्य शक्ति से प्रकृति के प्रतिनिधि तत्वों अथवा देवताओं को अधीन कर सृजनरत होना मनुष्य की विजय है। पर, इसकी अपनी शर्ते हैं, इनके अपने दिशा–निर्देश हैं –क्या आज का मानव इन दिशा–निर्देशों को समझता है ?''

''सभी कौरव असामान्य तरीके से आज के टेस्ट ट्यूब देवी की तरह जन्मे थे –यह भी तरीका प्राकृतिक नहीं था। यह प्रकरण भी मानव का प्रकृति पर विजय चिन्हित करता है। सवाल सिर्फ यही है –क्या वहां आदर्श या मर्यादा स्थापित है ? मनुष्य क्यों प्रकृति पर विजय प्राप्त करना चाहता है ? उसका उद्देश्य ?''

''शिव द्वारा मृत गणेश को जीवित करना, कुरुक्षेत्र युद्ध में जयद्रथ वध के समय सूर्य के अस्त होने का भ्रम रचना, किंकर्तव्यविमूढ़ कश्मकश से जूझ रहे अर्जुन के मन का संशय खत्म करने के लिए कर्म की व्याख्या (गीता) करते हुए समय को स्थिर कर देना, काल के प्रवाह को कृष्ण द्वारा रोकना, ये सब मानव द्वारा प्रकृति के ऊपर विजय के सुंदर उदाहरण हैं। पर, मानव और संसार के बीच संतुलन कायम है।''

''जब दुर्योधन द्वारा पांडवों को 1 इंच जमीन भी देने से इनकार किया गया तब जंगल साफ कर पांडवों ने खांडवप्रस्थ नामक नगर बसाया था। प्रसंग इसलिए भी रोचक है क्योंकि

हालांकि जंगल आबाद करना पांडवों की मजबूरी थी –फिर भी यहां पूर्व में बसे प्राणियों को विस्थापित होना पड़ा था। अर्जुन द्वारा अग्नि वर्षा से उस जंगल के नाग प्रजाति नष्ट हो गयी –कालांतर में नाग वंश के विनाश के लिए अर्जुन को जवाबदार मानते हुए नागवंशी राजा तक्षक ने महाभारत युद्ध में अर्जुन से बदला लेना चाहा। कृष्ण के प्रताप से तक्षक सफल नहीं हो सके। तब भी, तक्षक के वंशज पांडव वंश के दुश्मन हो गए।''

''वर्तमान समय में अमेरिकनों द्वारा रेड इंडियंस विस्थापित करना कुछ ऐसा ही है। ज्ञात हो कि रेड इंडियंस पर हुए अत्याचार के कारण अमेरिकन हॉलीवुड स्टार मेथड स्कूल के अभिनेता मार्लिन ब्रेंडों ने आस्कर ठुकरा दिया था! जब सभ्यता को धरती के स्वर्ग कम पड़ जाते हैं तो आततायी अर्थात विकसित मानव अपना अस्तित्व फैलाता है –प्रकृति पर विजय हासिल करता है और निश्चित ही यह मानव संस्कृति सभ्यता का रुख द्वन्द उत्पन्न करता है। सभ्यता की लड़ाई चाहे पांडवों का हो या नागवंश का, चाहे रेड इंडियंस का, चाहे विकसित आधुनिक मानव द्वारा जंगलों को आबाद करने की रही हो –इन सारे कर्मों में प्रकृति की स्थिरता प्रभावित होती है। संतुलन बिगड़ता है। यह विस्थापन है। इसके अपने गम और दर्द हैं। यह और कुछ नहीं, प्रकृति के संतुलन से सीधा विचलन है। और यह विचलन और भी दुखदाई है जब मानवीय हवस के कारण एक नहीं, दो नहीं सौ घड़े भी कम पड़ जाते हैं। आज आधुनिक मानव चांद खरीद रहा है। वहां भी जमीन मापी जा रही है।''

''पराकाष्ठा मानव मूर्खता की या मानवीय बौद्धिकता की ?''

लघुकथा–अमृता जोशी

ईमानदारी का ईनाम

बुधवा ने बहुत ज्यादा गरीबी से अपने बेटे अमर को पढ़ाया–लिखाया और अपने सपने को सच करवाया। उसका बेटा पढ़–लिखकर बहुत ही ईमानदार अफसर बन गया। यही तो सपना था बुधवा का, कि उसका बेटा एक नेक और ईमानदार अफसर बने।

उधर ऑफिस में आज फिर अमर से कहा गया –''मिस्टर अमर! ये रहा आपका ट्रांसफर आर्डर!'' अमर मुस्कुराकर आर्डर ले लिया। उसके साथ हर छः महीने में यही तो होता है। अब तो उसे अपनी ईमानदारी का ईनाम लेने की आदत सी पड़ गयी है।

8–विस्थापन

''प्राकृतिक संतुलन चाहे तकनीक से बिगड़े अथवा युद्ध के कारण, प्राणियों का विस्थापन निश्चित है। यह अपेक्षाकृत आबादी होती है इनका अपने परिवेश से कोई द्वन्द नहीं होता''

आज पितामह के ज्ञान–गंगा छठे दिन भी प्रवाहित थी। वर्षा ऋतु के समीप होने का आभास होने लगा था। इस आधुनिक कथा से मानो हमारा समय अपने काल और स्थान के परे चला गया था। हम मानव आबादी की दशा–दुर्दशा की कहानी सुन रहे थे –शायद आदिकाल से। एक बात थी –हमेशा निरीह प्राणी भुगते गए। चोट और पीड़ा उन्हीं के हिस्से आई। और किसके कारण ? यही सक्षम मानव कहे जाने वाले चंद लोगों के कारण! मनुष्य ने ही मानवों पर जुल्म किए, जबर का प्रयोग किया। लाखों लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान जबरिया स्थानांतरित किया। स्थानांतरण कोई पर्यटन–यात्रा ना थी। पीड़ादायक थी। भूख–अकाल, महामारी, युद्ध, बाढ़, बीमारी तो समझ में आता है –मगर जबरन थोपे गए युद्ध और मानव के तकनीकी क्रांति ने बड़ी आंतरिक तबाही मचाई।

''मानव समुदाय का समूह में विस्थापन हमारे इतिहास में दर्ज है –मगर आए दिन एक ऐसा विस्थापन मानव के भीतर घटित हो रहा है जिसका गवाह स्वयं मानव नहीं बन रहा पा रहा है। कुछ समझ में आ सके –वह जहां है वहीं से विस्थापित हो जा रहा है।''

''ये कैसे संभव है की कोई तकनीक मनुष्य के मन में अधिकार स्थापित कर ले और वहीं उसी जगह से उसे अपदस्थ कर दे ?''

हमने देखा कि वर्षा ऋतु प्रारंभ हो गई। मूसलाधार बारिश भी हुई। धरती के बिल में समाने वाले प्राणी सतह पर विचरण करने लगे। मेंढकों की तरह टर्राहट से सर्वत्र संगीत सा माहौल हो गया। झिंगुर और कीड़े, मच्छर और सर्प सभी सामान्य हो गए। टूटे छज्जों की मरम्मत की गई। पानी के प्रवाह के लिए सही निस्तार खोदे गए। नालियां गहरी की गई। खर–पतवार चमक उठे। वहीं किसानों का काम बढ़ गया। यही तो मौसम है –हल जोतो, बीज रोपो, अवांछित खर–पतवारों को निर्मूल करो। मेढ़ों को ऊंचा कीजिए। उन्हें ठोक–पीटकर मजबूत कीजिए। वृक्षों के पत्ते गहरे हरे रंग में रंग गए। उन्हें नया प्राण मिल गया। चारों ओर हरियाली।

किसी के आने और जाने का प्राकृतिक सिलसिला कोई नया नहीं है।

हम तो पितामह के ज्ञान प्रवाह के छठे दिन में स्थित थे –हममें प्रतीत हुआ हम सब तो अपनी कोठरी में है –मित्रों के साथ चाय–चबेना, भाजी–पकौड़ी के साथ। पितामह तो कहीं नहीं थे।

क्या उनका ज्ञान, उनकी कथा हम सब में विस्थापित हो गयी थी ? और, हमें कुछ विस्थापित होने के कारण हम स्वयं भी अपदस्थ हो गए थे। कहां से ? यह कैसा विस्थापन था ?

चौपाल पर तो कोई नहीं था। सिर्फ चारों ओर रिमझिम वर्षा! ना भोगन पंडित था ना ही धूरेंफेंकन और और ना ही पितामह! फिर यह पितामह की बातें हम सबके चित्त में, ध्यान–मनन में कैसे ?

शायद इसलिए कि मानव हाड़–मांस से अधिक भाव–प्रबल प्राणी है। हम चौपाल से विस्थापित होकर भी चौपाल में ही जी रहे थे। पितामह हमारे समक्ष ना होकर भी उनकी बातें हम में प्रवाहित थी।

हमें प्रतीत हो रहा था और पितामह कह रहे थे–

चाहे आग हो या पहिया –मानव जीवन को आमूल रूप से बदल कर रख दिया। लकड़ी और लोहे ने कुछ वैसा ही किया। जब बैलों और घोड़ों की जगह आधुनिक मोटर गाड़ियां बाजार में आ गई है तो अस्तबल के मालिक और गो–पालकों पर आ पड़ी। वे अपने ही घर से विस्थापित हो गए। जब मशीनी आविष्कार ने भेड़ों को निगलना प्रारंभ किया। जब गांव–गांव से चरखा और सूत कातने की पुरानी पद्धति अपदस्थ हो गए और उनकी जगह मशीनी, बारीक और अपेक्षाकृत मजबूत धागे और उससे तैयार वस्त्र बाजार में आने लगे । यूरोपीय कवियों ने लिखा –मनुष्य की तकनीक हमारी बाड़ के भेड़ों को निगल गई। अर्थात भेड़ों के फर से जिनका जीवन–यापन चलता था उनकी आवश्यकता ना रही और वैसे ही फर मशीनों ने तैयार करने प्रारंभ किए।

पहले मशीनी क्रांति, फिर औद्योगिक क्रांति और अब सॉफ्टवेयर क्रांति। आप नजर दौड़ाएं –टेलीफोन, दूरभाष, रेडियो की क्या दुर्दशा है। लकड़ी, लोहा, फिर इस्पात, फिर प्लास्टिक और अब फाइबर! यह सारे आविष्कार हमारे जीवन में चुपचाप चले आ रहे हैं। डाक–खाना है मगर डाकिए का भाव लोप हो चुका है। वो ख़त जो कहता है– 'चिट्ठी आई है. ...' हमारे भाव–जगत से अपदस्थ है। वो भाव जो प्रेयसी की आंखों और भौं की कल्पना किया करती थी –पल भर में एक क्लिक से आपके प्रोफाइल में मौजूद। कट और पेस्ट का जमाना! पल भर में। भावों का तत्काल ट्रांकॉल! पुराने टाइपराइटर दुनिया से समाप्त। पुरानी गाड़ियां समाप्त! डाक–टिकट और डाक–खाना का अस्तित्व हमारे जीवन में मुश्किल प्रश्न की तरह उपस्थित है, बस!

एक मशीनी क्रांति हमारे जीवन को निरंतर अपनी चपेट में ले रखा है –हम जहां हैं वहीं से हमारे भीतर प्रवेश पा रहा है –और हममें जो कुछ पूर्व संचित है उसे लगातार बड़ी खामोशी से अपदस्थ किए जा रहा है। हमें पता नहीं!

आश्चर्य! आश्चर्य!!

यानी तकनीक और मानव विकास जो हमें हमीं से छीन ले। हमसे प्रेम भाव छीन ले –हमारा धैर्य झपट ले, हमारे मन की शांति लूट ले। हम में वो चीज ठूंस दे जिसकी आवश्यकता ही नहीं। वह हमारे शयन–कक्ष में, हमारे बाथरूम में और ड्राइंग रूम, हर जगह हमें समेटे रखे। हम चारों ओर से घिरे –गुलाम! और मजा की हमें हमारे अस्तित्व बोध का ज्ञान नहीं!

जिस मनुष्य ने तकनीकी तरक्की की उसी तरक्की ने मनुष्य होने की गरिमा और भाव पर ही सवालिया निशान उठाए ?

जिस तरह नव उपनिवेशवाद आया नव साम्राज्यवाद के नए नए चेहरे आए –क्या नव गांधीवाद या नव मार्क्सवाद का आगमन भी होगा ? एक ऐसा सिद्धांत या भाव या विचार जिसमें मनुष्य एकाकी होकर अपने धागे स्वयं काते, चरखा चलाए। या फिर वह स्वयं का यूनियन और स्वयं का मैनेजमेंट कर सके ? वह स्वयं को संगठित करने वाला सिद्धांत कहां है ? क्या विश्व को नए सिद्धांतों, नए विचारों की आवश्यकता है या फिर हर चीज नियति पर छोड़ दी जाए –घटना घटते हुए को देखते जाएं।

सवाल धागे की तरह लंबे होते जा रहे हैं। इसका एक सिरा हाथ में आता है तो दूसरा सिरा कहीं गुम! वह कैसा है उसका स्वरूप ?

जब मानव ने अपना भस्मासुर तैयार कर ही दिया है तो कोई मनमोहिनी ख्याल भी होगा जहां ऐसे भस्मासुर पछाड़ खाते हैं।

मन –मन पर, चित्त–चित्त पर जिस तकनीक ने राज किया है और हमारा सारा संतुलन तहस–नहस कर दिया है –उसका हल शायद मानव–मानव का मन और चित्त ही हो जहां उसकी अदालत में आरोपियों की पहचान हो –जहां वह स्वयं अपनी जिरह करे –स्वयं जज करे और स्वयं ही आरोपी को दंडित करे। यह कुरुक्षेत्र एकाकी मनुष्य को

अपनी एकाकी दुनिया में लड़नी होगी। शायद!

जिस तरह तकनीक और मशीनें हममें व्याप्त हैं उसी तरह मानव हित के विचारक और सिद्धांतकार भी। बस, लड़ाई का मैदान पृथक होगा। जो घर में बेजा घुसा हुआ है –जो बेजा मानव चित्त को अपना अनावश्यक घर बनाए बैठा है –उसे अपदस्थ करना तो आपको ही है।

तकनीक और मशीन के हम दुश्मन नहीं –पर अति सर्वस्य, अतिरिक्त वरदान उसके सर पर क्यों ?

क्या हम पूरी तरह उखड़ जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं और उस दिन की राह देख रहे हैं कि कोई रोबोट हम पर हुकूमत करें ? बीमारी का इलाज आज ही क्यों नहीं ? बीमार के मर जाने की प्रतीक्षा क्यों ?

लघुकथा–अमृता जोशी

मोल–भाव

''बस–बस यहीं रोक दे।'' शीला ने रिक्शेवाले से कहा। रिक्शे से उतर कर बीस रूपया पकड़ाते हुए बोली ''ये ले!''

रिक्शावाला बोला–''ये क्या मैडम बस बीस रूपया ? चालीस रूपया होता है।''

''क्या ? चालीस रूपया! हवाई जहाज से लाया है क्या ?'' शीला एकदम से चिल्लाकर बोली।

''मैडम! हम हवाई जहाज चलाते तो ये रिक्शा नहीं खींचते। इतनी दूर से ले कर आ रहा हूं मैडम, और फिर देखो कितनी तेज धूप भी है।'' रिक्शावाला का चेहरा दयनीय हो गया। शीला दस का नोट निकाल कर उसके हाथ में रखकर, तेजी से साड़ी के शो–रूम में चली गयी।

शो–रूम में शीला साड़ियां देखने लगी। साड़िया सुंदर थी पर कीमत बहुत ज्यादा थी। कीमत सुन–सुनकर शीला का दम निकला जा रहा था। उसने साहस बटोर कर कहा –''कुछ कम कीजिए न! कीमत तो बहुत ज्यादा है।''

शो–रूम का मालिक बोला –''देखिए मैडम! हम क्वालिटी के हिसाब से ही रेट बता रहे हैं, यहां मोल–भाव नहीं चलता है। वो देखिए बोर्ड में लिखा है 'एक रेट, मोल भाव नहीं।' आपको लेना है तो लीजिए वरना आप की मर्जी। आपको सोचना वाहिए न, इतनी बड़े शो–रूम में कीमती साड़ियां ही होगी न!''

शीला टका सा जवाब सुन साड़ी बगैर खरीदे ही बाहर आ गयी।

9–उम्मीद एक नये उजाले की

हम जिस प्रकाश के फैलने से आनंदित हैं –वह प्रकाश चाहे लैंप से आ रहा है या बल्ब की रोशनी से –तकनीक दोनों जगह है। वही तकनीक मानव वरदान है, जो आज अभिशाप कैसे बन सकता है ? जाहिर है चीजों के दोनों पहलू होते हैं और वह अंततः हम पर निर्भर करता है।

हम आम लोगों से बल्ब के आविष्कार की उम्मीद नहीं कर सकते, उनसे सॉफ्टवेयर क्रांति की आस नहीं लगा सकते, मगर हां, उनमें अभिशाप या वरदान में भेद का कौशल हो, सूझ–बूझ हो –इसकी उम्मीद ही नहीं –आवश्यकता भी महसूस करते हैं।

किसी भी अतिवादी दृष्टिकोण का हमारे जीवन, समाज या इस विश्व परिदृश्य में कोई स्थान नहीं! पूंजी लाभ अतिक्रमण करता है। इसके अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा बेलगाम है। सभी राह देख रहे हैं कि कोई तो रोके ?

कौन रोके ? नया गांधी ? नया स्टालिन, या नया समाजवाद ? बुद्ध या महावीर, जैन या शंकर.....? हमें कितने विचार और सिद्धांत चाहिए ? जीवन के सीधे से फलसफे को समझने के लिए ?

क्या गांधी हममें नहीं.....?

क्या मार्क्स के सिद्धांत और समभाव हममें नहीं है....?

क्या शंकर, महावीर और बुद्ध हममें नहीं.....?

वर्षा ऋतु जोरों पर है, आकाश के बादल हटना ही नहीं चाहते। धरती चहुंओर गीली हो चली है। छज्जे से टपकती जल की बूंदें अब किसी रोदन का एहसास दिलाने लगी हैं। सूरज के दर्शन बीते जमाने की बात हो गई है –सितारे तो दूर चांद की झलक भी नहीं मिलती।

पर हमें पूरी आशा है –हम प्रकृति को समझ चुके हैं और यह जानते हैं कि बादल छंट जाएंगे।

हमें उम्मीद है।

अब मुझे छज्जे से टपकती बूंदों में गांधी, मार्क्स, शंकर, बुद्ध, महावीर सभी दिखने लगे। आशा ने हमारी उम्मीदें जगा दी।

कोई बात या विचार मृत नहीं हुआ, ना ही अप्रसांगिक, वे जीवित हैं।

वह सब हम में जीवित हैं.....।

सवाल है –क्या हम अपने जीवन से न्याय कर पाएंगे ? हम एक ऐसा जीवन मूल्य स्थापित कर पाएंगे जिससे सबका

हित सधे ?

हमारी लड़ाई कोई मसीहा क्यों लड़ें ? वह हमारे हिस्से की लड़ाई है।

लगातार जलसंचय से हमारे खेत लबालब हो चले हैं –पानी का सही निस्तारण जरूरी है। एक हाथ में छाता दूसरे हाथ में फावड़ा.....

हम चले खेत की ओर.....!

कुछ पुराने बीजों को फिर से रोपना था.....

मार्क्स, गांधी.....नेहरू और उन तमाम स्वप्नदर्शियों के ब्रीड.....!

लघुकथा–अमृता जोशी

कामचोरी

अमृता जोशी
15–स्टेट बैंक
कालोनी, धरमपुरा,
जगदलपुर
जिला–बस्तर
मो–9424285131

आज ऑफिस जाने का मन बिल्कुल नहीं हो रहा था। पता नहीं क्यों ऑफिस के ढेर सारे काम ने कामचोरी करने पर विवश कर दिया था मुझे। मन बार–बार यही सोच रहा था कि रोज वही ढेर सारी फाइलें, हिसाब–किताब, लिखा–पढ़ी. ..उफ्फ। मैंने मन बना ही लिया कि आज छुट्टी ले ही लूंगी।

तभी डोरबेल बजी। और कामवाली सविता हांफती हुई अंदर आयी। मैंने पूछा –''क्या हुआ ?''

वह कहने लगी –''क्या बताऊं दीदी! आज तो बहुत काम हो गया। घर पर मेहमान आये हैं तो काम ज्यादा। फिर पानी के लिए नल पर झगड़ा। हड़बड़ी में आ रही थी तो एक स्कूटी वाला हल्के से ठोकर मार दिया। और भाग गया। काम पर आनाा जरूरी होता है दीदी, आखिर मेहनत के चार पैसे कमाते हैं बेईमानी करेंगे तो कैसे चलेगा। है ना दीदी!''

उसकी बातों से मैं चौंक गयी। ऐ गरीब औरत चार पैसों के लिए ईमानदारी से काम करना चाहती है और मैं तो उससे कई गुना ज्यादा पैसे तनखा में लेती हूं।

10–रूकावट के लिए खेद है –भारत में मार्क्सवाद

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि मार्क्सवाद विश्व के राज्यों में आंकड़ों के हिसाब से सत्ता प्राप्त करने और मार्क्सवादी सिद्धांतों के अनुकूल राज–पाट चलाने के उदाहरण सीमित ही रहे हैं, पर फिर भी इस सिद्धांत की मूल प्रेरणा ने लगभग सारी दुनिया को किसी ना किसी रूप में प्रभावित किया ही। सत्ताएं हिल गईं, अतिवादी विचार से प्रेरित सत्ताएं भयभीत होने लगीं और प्रायः सभी देशों में चाहे कितनी भी दक्षिणपंथी सरकार हो, उनके द्वारा मजदूरों और मालिकों के मद्देनजर, राज्यों द्वारा 'कैपिटल' पर नियंत्रण इत्यादि पर प्रभावी कानून बनाए गए। इसका सीधा प्रभाव उन लाखों–करोड़ों पिस रहे मजदूरों और मध्यमजीवी जीवन जी रहे कामगारों के जीवन और रहन–सहन पर सीधा असर पड़ा। यही नहीं महत्वपूर्ण देशों के नेताओं ने मार्क्स की मूल भावना को पकड़ कर अपने देश में उपनिवेशी सत्ताओं से सीधा संघर्ष किया, देश को आर्थिक दोहन से मुक्त कर आजाद देश का निर्माण किया। चीन जैसा देश जोकि चार–पांच विदेशी संस्थाओं के अधीन था अपने देश को आजाद कराने के लिए माओ के नेतृत्व में बंदूक और मजदूरों, बेबसों को एकत्रित करने हेतु मार्क्स के दर्शन का सहारा लिया। अलग–अलग देशों ने अपने–अपने देशों में मार्क्स के सिद्धांत का अपनी जमीन के अनुकूल, एक तरह से सिद्धांतों का अनुवाद प्रस्तुत किया। आज मार्क्सवाद सोवियत रसिया के पतन के बाद भी चीन, क्यूबा, वियतनाम, रसिया उत्तरी कोरिया में मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में मौजूद है। अर्थात यहां के पूंजीपति बेलगाम नहीं हैं –जरूरी और आधारभूत चीजें सरकार के सीधे नियंत्रण में हैं। पूंजीपतियों द्वारा मजदूरों का शोषण न हो –वहां प्रभावी श्रम कानून बने हैं। अत्यंत विकसित देश जैसे नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क में भी मिश्रित अर्थव्यवस्था सुंदर रूप से संचालित है। डेनमार्क का दूध उत्पादन तो कोऑपरेटिव मेथड का सुंदर उदाहरण है। इसके अतिरिक्त अल्जीरिया, अंगोला, वियतनाम, बांग्लादेश, गियाना, भारत, मोजाम्बिक, पुर्तगाल, श्रीलंका, तंजानिया ऐसे देश हैं जहां के संविधान डेमोक्रेटिक चुनाव को प्रभावी रूप से अख्तियार कर अपनी राज सत्ता को समाजवादी स्टेट घोषित करते हैं। कानून द्वारा श्रमिक कामगारों के हित सीधे तौर पर राज्य की निगरानी में रखे गए हैं। यह मार्क्सवादी सोच का

ही परिणाम है कि विकसित राष्ट्र जैसे आयरलैंड, फ्रांस, ग्रेट–ब्रिटेन, न्यूजीलैंड, बेल्जियम, नीदरलैंड जैसे देशों की सत्ता एक मजबूत समाजवादी सोच से प्रेरित व संचालित है। सरकारें उनके हितों को ध्यान में रखकर ही कानून बनाने को बाध्य है। इस बात को आमजन और प्रबुद्ध जनों को स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि भले ही किसी राज्य–राष्ट्र में मार्क्सवादी सोच के प्रतिनिधि कम संख्या में हों –गणित कमजोर हो मगर मार्क्सवादी सिद्धांत का जोर या उसकी सच्चाई इतनी प्रबल है कि सरकारें चाहे जिसका प्रतिनिधित्व करती हों, मार्क्सवाद के मूल भाव से अधिक विचलन नहीं कर सकतीं। आज कोई भी कर्मचारी या पुलिस का सिपाही 8 घंटे से अधिक ड्यूटी के लिए जाने पर आपत्ति उठा सकता है। बात बहुत छोटी सी लगती है –मगर इसी बात ने कभी क्रांति का रूप ले लिया था –यही मार्क्सवाद की पूरे विश्व को देन है। यह सिर्फ एक उदाहरण है। सीधे सत्तासीन होने के आंकड़े निश्चित रूप से सीमित हैं मगर –प्रभाव का पैमाना ? शायद हम ठीक से माप ही नहीं सकते।

अब हम थोड़ा अपने देश के बारे में चर्चा करें।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद जब मार्क्सवाद पूरी दुनिया में चर्चा का विषय था और विश्व के प्रायः सभी प्रबुद्ध लोग, नेता, कलाकार और लेखक किसी न किसी रूप से इस वाद से प्रेरित हो रहे थे। सोवियत रसिया लेनिन के नेतृत्व में बड़ी तेजी से प्रगति कर रहा था। सबसे अहम बात थी –राजनीतिक लक्ष्य की प्राप्ति –साम्यवाद जिसकी चर्चा की जा चुकी है –अर्थात ऐसा राज्य जहां सभी की भागीदारी हो या ऐसी सत्ता जो अपने पीपुल/ पब्लिक पर नाम मात्र या शून्य शासन करती है। आर्थिक समानता द्वारा सामाजिक समानता प्राप्त कर ऐसा समाज अपने लिए एक आदर्श स्टेट की ओर अग्रसर होता है– स्पष्ट था कि उस दौर के यूरोपीय देश इटली, जर्मनी, ग्रेट–ब्रिटेन, पुर्तगाल इत्यादि जो विश्व के अर्द्धविकसित देश एशिया, अफ्रीका के देशों पर बेजा कब्जा जमाए हुए थे –उन्हें तत्काल आजाद करना मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुरूप था। प्रथम विश्व युद्ध की विजय के पश्चात मित्र राष्ट्रों के बीच हुई डील को सोवियत रसिया ने न केवल उजागर कर दिया, बल्कि उनके व्यापारिक हित (लूट की नीति) को दुनिया के सामने लाकर पूंजीवादी लूटनीति को उजागर किया। इस लूटनीति और इसी स्वार्थ के कारण विश्व युद्ध झेल रही सरकार और औपनिवेशिक आवाम, मार्क्सवाद में अपनी मुक्ति देखने लगी। शोषण में पिस रही जनता को अपना मसीहा मिल गया था। मार्क्सवाद अफीम की तरह प्रभावी हो रहा था। भारत से एम. एन. रॉय जैसे प्रबुद्ध सन 1920 में भारत की दशा को लेकर लेनिन से वार्तालाप किया। मार्क्सवादी विचार को किस तरह अपने समाज में लाया जाए –उसका व्यवहारिक अनुवाद किया जाए –यह बड़ी समस्या थी। यह समस्या सिर्फ अपने ही देश में नहीं थी –विश्व के अधिकांश देशों के साथ कमो–बेश यह समस्या आयी कि मार्क्स के मूल दर्शन को किस तरह अपनी जमीन में प्रतिस्थापित (ट्रांसप्लांट) किया जाए। चूंकि मार्क्स का मूल विचार और औद्योगिक नगरों और वहां कामगारों पर हो रहे अन्याय के मद्देनजर एक वैज्ञानिक सोच के तहत तैयार किया गया था –अतः हू–ब–हू या करीबी आर्थिक–सामाजिक स्थिति एक समान विश्व के देशों में नहीं थी जहां मार्क्स के विचार उसी दिए पैमाने पर अधिरोपित किए जाएं।

भारत के प्रबुद्धजनों के समक्ष यह चुनौती थी कि हमारा समाज जो जाति–प्रथा से बुरी तरह ग्रसित था –समाज टुकड़ों में बंटा था –उन्हें एक किया जाए या मार्क्स के विचार को शक्ति केंद्रित कर देश को आजाद किया जाए। क्योंकि मार्क्स के मूलभूत सिद्धांत को देखे तो इसकी जो भौतिक द्वंदवाद की स्थिति है –अर्थात आमजन और पूंजीपति –जिसका इंटरेस्ट हर हाल में अलग–अलग रहता है, देखा जाए तो तब गुलाम भारत न ही एक विकसित पूंजीवादी राष्ट्र था न ही इसके आमजन अर्थात समाज के दलित, शोषण की शिकार पब्लिक एक थी। एक इसलिए नहीं थे क्योंकि समाज जाति में बंटी थी। अर्थ की बुनियाद उद्योग तो लगभग था ही नहीं, कृषि पर जीवन यापन हो रहा था। देश व समाज पिछड़ी अवस्था में था ऐसे में क्या बुर्जुआ, क्या प्रॉलेटेरियन और क्या पूंजीपति। हमारे समाज की सच्चाई सद्गति, ठाकुर का कुआं, कफन और गोदान में व्यक्त हो रही थी।

निश्चित रूप से हमारे यहां की स्थिति जिसे कहते हैं 'कोढ़ में खाज' वाली थी –अर्थात एक तो जाति में छुआछूत से ग्रसित समाज, गुलाम भारत और दूसरे गरीबी, अशिक्षा! समाज को मार्क्सवाद के विचार किस तरह सौंपे जाए कि अपनी बुराई भूलकर समानता के सिद्धांत अख्तियार कर एक नई आर्थिक–राजनीतिक पहल करें।

फिलहाल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इतिहास में जैसा कि हम देखते हैं कि असहयोग आंदोलन के बाद गांधीजी के विचार डगमगाने लगे –कांग्रेस के भीतर ही 'लेफ्ट विंग' अपने विचारों के कारण लोगों के बीच लोकप्रिय होने लगा। सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह इत्यादि के उदाहरण हमारे सामने हैं।

स्वयं जवाहरलाल नेहरू जो गांधी जी को अत्यंत प्रिय थे –मार्क्सवादी विचार से बहुत प्रेरित रहे हैं –और जैसा कि आगे हम देखेंगे –अपनी मिश्रित अर्थव्यवस्था में नेहरू ने मार्क्सवादी मॉडल का किस तरह आधुनिक भारत के निर्माण में योगदान दिया। दूसरी ओर इसी सिद्धांत से प्रेरित हो भगत सिंह, राजगुरु, और सुखदेव, चंद्रशेखर आजाद जैसे क्रांतिकारियों की मिसाल हम देखते हैं। वे सब साम्यवाद से ही अभिप्रेरित रहे थे। हम सब ने देखा है कि इस 'लेफ्ट विंग' की बढ़ती लोकप्रियता और गांधी जी द्वारा खुलकर विरोध के कारण स्वयं गांधी जी की छवि कांग्रेस के भीतर हिल गई थी –तब सुभाष ने कांग्रेस छोड़ 'फारवर्ड ब्लॉक' की स्थापना की। यह बात द्वितीय विश्व युद्ध के समय की है।

प्रसंग आया है इसलिए लगे हाथों गांधी दर्शन और मार्क्सवादी चिंतन में जो स्वतंत्रता संग्राम के दौरान और कांग्रेस के इतिहास में जो संघर्ष देखते हैं –उस पर थोड़ी टीका कर ली जाए। आखिर गांधी द्वारा लेफ्ट विंग अर्थात खासकर क्रांतिकारी कहे जाने वाले कदम का विरोध क्यों किया जाता था। गांधी द्वारा सफल आंदोलन जैसे सविनय अवज्ञा आंदोलन 1919 से प्रारंभ हुआ था –चौरा–चौरी कांड के बाद गांधी द्वारा वापस लिया गया। उसी तरह भारत छोड़ो आंदोलन जब प्रतीत होता था आंदोलन अपना लक्ष्य हासिल कर लेगा –ऐन वक्त पर गांधी द्वारा ठगा–सा राजनीतिक समझौता कर आंदोलन रोक देना तथाकथित कई नेताओं को, विद्वानों को नागवार क्यों गुजरा ? और गांधी की सोच क्या थी ? आखिर उन्होंने ऐसा क्यों किया ?

लघुकथा–मदन देवड़ा

भगवान की भक्ति

नित्य की तरह दस बजते ही मैं स्कूल की ओर रवाना हो चुका था।

अभी मैं कुछ ही दूर पहुंचा था कि एक साधुबाबा मिल गये। बोले–''बाबू! भगवान के नाम कर कुछ.....!''

मैंने कहा–''बाबा! भगवान तो महान है, सर्वगुण सम्पन्न है, उसके नाम पर मैं आपको क्या दे सकता हूं ?'' कुछ सोचते हुए मैं फिर बोला–''अरे, हां, याद आया, हमारे विद्यालय में एक बागवान की आवश्यकता है, आप वहां बागवानी का काम किये करना। हम आपको रोटी–कपड़ा भी देंगे।''

मेरी बात सुनकर, साधु महाराज आग बबूला हो गये, चिमटा फटकारते हुए बोले–''छी....छी..कैसा घोर कलयुग आ गया है, अरे मूरख! मैं तेरे यहां बागवानी का काम करूंगा ? और वो भी अपने भगवान की भक्ति छोड़कर!''

मैं बोला–''तो महाराज! आप फिर क्यो आये हैं मेरे पास अपने भगवान की भक्ति छोड़कर!''

11–परिदृश्य

दिनांक 23 मार्च 1931 –भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को ब्रिटिश सरकार ने फांसी दी।

8 अप्रैल 1929 को पब्लिक सेप्टिक बिल और ट्रेड डिस्प्यूट बिल के विरोध में शहीद भगत सिंह और साथी बटुकेश्वर दत्त द्वारा सेंट्रल विधायिका में बम फेंका गया। धमाका हुआ –यह धमाका उस बिल के विरोध में था और बहरों को सुनाने के उद्देश्य से फेंका गया था। उक्त बिलों के पास होने का अर्थ था भारत के नागरिकों के अधिकार छिन जाते, विशेषकर कामगारों के। बम धमाके का उद्देश्य किसी की क्षति पहुंचाना नहीं था –बम क्षतिरहित था। धमाकों के बाद भगत सिंह एसेंबली से फरार हो सकते थे, परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने स्वयं अपनी गिरफ्तारी दी और इस प्रकरण में ट्रायल कोर्ट को, देश और देश के नौजवानों को अपना उद्देश्य, आदर्श को संप्रेषित करने का एक मंच बनाया। उन्होंने निर्भीकता से अपने आदर्श–विचार को अदालत के समक्ष रखा। ट्रायल के लिए अदालत जाते हुए 'इंकलाब जिंदाबाद' 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' के नारे लगाए। उत्साह और आदर्श से भरी भीड़ और विदेशी साम्राज्य से कुपित नौजवानों द्वारा 'देश भक्त अमर रहें' 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है देखना है जोर कितना बाजु ए कातिल में है' 'मेरा रंग दे बसंती चोला' जैसे गीत गाए गये। नारे लगाए।

भगत सिंह अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल रहे थे। वे घर–घर के हीरो और नौजवानों के आदर्श बन चुके थे। अहिंसा का अनुसरण करने वाले कांग्रेसी भी उनके प्रशंसक बन चुके थे। सारे हिंदुस्तान में अखबारों के जरिए वे चर्चा का विषय बन गए थे।

और जिस दिन उन्हें उनके साथियों के साथ फांसी दी गई –लाखों लोगों ने भोजन नहीं किया –बच्चे स्कूल नहीं गए –दफ्तर सूने पड़े रहे। माताओं ने घर में चूल्हा नहीं जलाया।

उसी तरह बंगाल के जतिन दास लाहौर जेल में अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल पर थे। 64 वें दिन उनकी मौत हो गई। पूरे देश में भूख हड़ताल के पक्ष में रैलियां निकाली गईं। लाखों लोगों ने प्रदर्शन रैली में हिस्सा लिया। मृत्यु उपरांत उनके शव को जब कोलकाता लाया जा रहा था तो लाखों नौजवानों ने लाहौर से कोलकाता कूच किया –अंतिम संस्कार में दो लाख से ऊपर लोगों ने हिस्सा लिया। कोलकाता (तब कलकत्ता) की सड़कें दो मील तक लोगों से भरी रहीं।

जतिन दास देशभक्त थे –उनकी मांग ब्रिटिश सरकार से थी कि उन जैसे नौजवान जो अपने देश की खातिर कानून तोड़ रहे हैं –वह अपराधी नहीं है –ब्रिटिश सरकार को उनसे क्रिमिनल की तरह नहीं –सम्मानजनक तरीके से पेश आना चाहिए। स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। फ्रांस की क्रांति, अमेरिकन लिबरेशन, रसिया की बोल्शेविक (साम्यवादी) क्रांति –यह सभी आवाम और समाज को समानता–स्वतंत्रता की दुहाई दे रही थी। जतिन दास जैसे नौजवान की शहादत ने करोड़ों भारतीयों को झकझोर कर रख दिया।

गांधी जी द्वारा आहूत 1920 का असहयोग आंदोलन चरम पर पहुंच चुका था। आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बैनर तले महात्मा गांधी के नेतृत्व में और उनके आह्वान पर देशव्यापी समर्थन प्राप्त था। मगर चौरा–चौरी हिंसा के कारण गांधी जी द्वारा आंदोलन वापस ले लिया गया। प्रायः सभी लीडर सकते में थे –कांग्रेस ने जन व्यापी आंदोलन खड़ा किया था, हिंदू मुस्लिम कंधे से कंधा मिलाकर हिस्सा ले रहे थे। क्रांतिकारी दल के नेता भी जो गुप्त रूप से सशस्त्र हथियार के माध्यम से देश को आजाद कराना चाह रहे थे –उन्होंने भी अपनी गतिविधियां रोक दी थी और कांग्रेस के समर्थन में आ गए थे।

अचानक उस वक्त जब आंदोलनकर्ता अति उत्साहित थे –ब्रिटिश सरकार की जमीन हिल गई थी वैसी स्थिति में आंदोलन वापस लिया जाना हैरानी की बात थी। माने हुए सभी नेता चाहे जवाहरलाल हो या सुभाष या मुस्लिम लीडर –सभी गांधी जी के इस कदम से कुपित थे। असहमत थे। कईयों का तो यह विचार था कि गांधीजी ने अवाम के साथ धोखा किया। उनकी कटु आलोचना की गई।

युवा शिक्षित राष्ट्रवादियों की आशा मर गई। उन्हें गांधीजी और अहिंसा और गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस का भविष्य कुहरे में समाया हुआ प्रतीत होने लगा। विकल्प की तलाश होने लगी। कांग्रेस लीडरशिप –चाहे उदारवादी हो या उनके नेतृत्व में लड़ा जाने वाला संवैधानिक सुधार, स्वराज्य दल की कोशिशों हों, वे सब अनुनय–विनय, प्रार्थना और आवेदनों–चर्चाओं तक सीमित थे। आवाम देख समझ रही थी कि शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य इस तरीके से हिलने वाला नहीं। अहिंसा एक मिथ सा था।

शिक्षित नौजवान देश दुनिया की खबरों से वाकिफ थे। प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हो चुका था और गांधी जी के आह्वान पर आवाम ने ब्रिटिश शासन को भरपूर सहयोग दिया। सहयोग ही नहीं दिया अपितु युद्धरत ब्रिटिश सरकार को युद्ध के दरम्यान आंदोलन छेड़ना नैतिक रूप से गलत माना। हालांकि इसके विरुद्ध कई नेता यह मानते थे कि साम्राज्यवादी ब्रिटिश को यही उचित समय होगा –उन्हें कमजोर करने का।' पर गांधीजी के निर्णय को समझने के लिए गांधी के आदर्श को समझना पड़ेगा। खैर!

यह अकारण नहीं था कि चंद्रशेखर आजाद, सूर्यसेन, जतिन दास, जोगेंद्र चंद्र चटर्जी, सुखदेव, भगत सिंह, भगवती चरण वोहरा इत्यादि जो बाद में क्रांतिकारी आंदोलन का रास्ता अख्तियार किया –वे सब के सब 1920 के गांधी जी के असहयोग आंदोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा ले चुके थे।

शनैः शनैः क्रांतिकारी राष्ट्रवादी एक तरफ पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार तो दूसरी तरफ बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश शामिल) अलग–अलग क्रांतिकारियों के नेतृत्व में सक्रिय हो गए। विश्व युद्ध के बाद कामगारों द्वारा ट्रेड यूनियन स्थापित हो गए थे –यह कामगार विश्व में हो रहे सोशल क्रांति के आदर्शों से प्रेरित थे, उनकी सफलता देख रहे थे और यूनियन की महत्ता वे अब समझने लगे थे। क्रांतिकारियों ने उन्हें अपना बनाया –राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन में उनकी सक्रियता का लाभ हासिल किया। यह सारी बातें, यह आदर्श और उत्साह विश्व में रसिया क्रांति की सफलता से उत्प्रेरित थे। बोल्शेविक के नेतृत्व में (लेनिन) रसिया की जार सत्ता को उखाड़ फेंका गया था जो कि असमानता–शोषण और पूंजीवाद का भयावह प्रतीक था।

काव्य

वे दिन कब आयेंगे

रोटी एक भले हो
लेकिन–
मिल–जुल जिसे–
सभी खाएंगे,
भैया! वे दिन कब आएंगे ?
ऐसे भी दिन जहां,
नियति के नाम–
अनैतिक कृत्य न होते,
ऐसे दिन भी जहां,
'न्याय' के नाम–
भ्रमित युग सत्य न होते!
जाति–धर्म–मजहब की
पावन नूतन गंगा बहा पाएंगे,
समता के
सुर–ताल मिलाकर
एक साथ मिलकर गाएंगे!

मदन देवड़ा
मालीखेड़ी मार्ग
आफीसर्स कालोनी के निकट
तराना–456665
जिला–उज्जैन
मो–9752045248

12–चंद्रशेखर आजाद, सूर्य सेन एवं अन्य क्रांतिकारी

सन 1920 में सविनय अवज्ञा आंदोलन का शिखर पर पहुंचकर आंदोलन वापस लिया जाना और गांधी जी की प्रतिज्ञा कि वे एक वर्ष के भीतर स्वराज्य की स्थापना कर देंगे। स्वराज्य तो दूर, इस आंदोलन ने सैद्धांतिक राजनीतिक दायरे में एक तिनके का योगदान नहीं किया। पूर्णतः फेल! यह अलग बात है कि असफल कहानियों के पीछे भी सफलता के सूत्र छिपे होते हैं –जिसकी समझ बाद की पीढ़ी को होती है, गलतियों से सबक लिया जाता है –इत्यादि बातें कुछ बाद में और अक्सर कई दफा तो बहुत बाद में दृश्य में आती है। खैर!

पूरे राष्ट्र स्तर पर उद्वेलित आंदोलन एक तूफान की तरह था और अचानक राजनीतिक परिदृश्य में शून्यता का बोध होने लगा था। 1923–24 के पश्चातवर्ती जितने भी युवा क्रांतिकारी आंदोलनकारी थे वे सब के सब कांग्रेस के आंदोलनों में बड़े उत्साह से भागीदारी कर चुके थे। बाल गंगाधर तिलक, लोकप्रिय नाम लोकमान्य तिलक उनके आदर्श थे।

उत्तर भारत में राम प्रसाद बिस्मिल, जोगेश चटर्जी और सचिंद्र नाथ सान्याल ने युवाओं को क्षुब्ध मनोदशा से बाहर किया –'बंदी जीवन' का प्रकाशन जो कि आंदोलनकारियों के लिए प्राण वायु की तरह था। अक्टूबर 1920 में कानपुर में 'हिंदुस्तान रिपब्लिक एसोसिएशन' की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार से देश को मुक्त कराना था और उनका लक्ष्य फेडरल रिपब्लिक ऑफ यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ इंडिया की स्थापना थी। गौर करने की बात है कि हमारे युवा आंदोलनकारी तब विश्व की गतिविधियों से किस तरह वाकिफ थे –वह जमाना और था जब खबरें पहुंचने में महीनों लगते थे। भाषा का माध्यम अंग्रेजी था और देश में शिक्षा की स्थिति दयनीय थी। खैर!

अपने संगठन को अंजाम देने के लिए धन की आवश्यकता थी –सशस्त्र दल की नियुक्ति, हथियार इत्यादि की व्यवस्था कैसे हो –एसोसिएशन के सदस्यों ने 9 अगस्त 1925 को काकोरी ट्रेन लूटा। काकोरी लखनऊ का आंतरिक गांव था। ब्रिटिश सरकार ने कड़ी कार्रवाई की, तत्काल एक्शन लिए गए। कई युवा संदेह के आधार पर गिरफ्तार किए गए, आसफउल्ला खान, राम प्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह और राजेंद्र लाहिरी को सूली पर चढ़ा दिया गया। चार अन्य संदिग्धों को अंडमान निकोबार काला पानी की सजा से नवाजा गया, 17 अन्य को लंबी सजा काल कोठरी में दी गई। चंद्रशेखर आजाद बच निकले।

इस घटना और सरकार के दमन से गहरा झटका क्रांतिकारियों को लगा। फिर भी युवा शक्ति पुनः केंद्रित हुई और उत्तर प्रदेश में विजय कपूर, विजय कुमार सिन्हा, शिव वर्मा तथा भगत सिंह, भगवती चरण वोहरा और सुखदेव पंजाब से चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में हिंदुस्तान रिपब्लिक को पुनर्गठित किया। अंततः उत्तर भारत के लगभग सभी क्रांतिकारी फिरोजशाह कोटला में मैदान में 10 सितंबर 1928 को एकत्रित हुए और अपना सामूहिक लीडरशिप का एजेंडा तैयार किया। समाजवाद को आदर्श बनाया। पार्टी का नाम अब 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन' रखा गया।

सोशलिस्ट रिपब्लिक के युवा क्रांतिकारी समझ चुके थे कि सशस्त्र हथियार से व्यक्तिगत लड़ाई और एक तरह से नहले पे दहला वाली नीति से ब्रिटिश सरकार को बहुत क्षति होने वाली नहीं। न ही आवाम पर दूरगामी असर दिखने वाला था। हां, कुछ सकारात्मक प्रभाव युवा–पीढ़ी पर था –निश्चित रूप से, मगर क्रांतिकारियों ने इस व्यक्तिगत हीरोइज्म से निकलकर समाजवादी आदर्श के तहत आवाम को जागृत करना बेहतर समझा। सोशलिस्ट रिपब्लिकन के समक्ष एक आजाद भारत का सपना था जो निश्चित रूप से आधुनिक विचार शैली से ओत–प्रोत एक जागृत समाज की तरह चित्रित था।

ऐसे ही समय साइमन कमीशन का पंजाब में विरोध कर रहे लाला लाजपत राय शेर–ए–पंजाब की हत्या पुलिस के लाठीचार्ज के कारण हो गई। सांडरर्स –पुलिस अफसर को जिम्मेदार मानते हुए उसे क्रांतिकारियों ने उड़ा दिया और सांडरर्स की हत्या को न्यायोचित करार दिया गया। हिंदुस्तान रिपब्लिक ने स्पष्ट लिखा कि जो नेता लाखों लोगों के दिलों पर राज करते हैं उनकी हत्या एक साधारण पुलिस अफसर के हाथों हो –यह राष्ट्र का अपमान है। हमें एक व्यक्ति को मारने का अफसोस है पर वह एक उस तंत्र का हिस्सा था जो इस तरह के अमानवीय और अन्याय पूर्ण कृत्य करता है। ऐसे तंत्र का खात्मा युवा पीढ़ी का उद्देश्य है।

इसी सिलसिले में कि कैसे युवाओं को जागृत किया जाए –जिसमें ब्रिटिश सरकार का विरोध तो हो ही –लोगों को अपने एजेंडे से जागृत भी किया जाए। भगत सिंह द्वारा असेंबली बम कांड उसी नीति का प्रतिफल था।

बंगाल में युवा दल ने छोटे शहरों, कस्बों और गांवों में जागृति और समाज हित के मिशन फैलाने का कार्य जारी रखा। स्वराज्यवादी चितरंजन दास की मृत्यु के बाद का कांग्रेस की कमान बंगाल में दो फाड़ हो गयी। सुभाष एक दल के तथा जी. एम. सेनगुप्ता दूसरे दल के प्रतिनिधि नेता हुए। युगांतर और अनुशीलन पार्टी के नाम से क्रमशः सुभाष

और सेनगुप्ता ने जनता को लीड किया। एक बदनाम पुलिस कमिश्नर चार्ल्स टेगार्ट की हत्या की जगह गलती से 1924 में डे नामक अन्य अंग्रेज मारा गया। मारने वाले क्रांतिकारी गोपीनाथ साहा थे। सरकार ने ऐसे मौकों पर कुख्यात दमन का सहारा लिया। सैकड़ों संदिग्धों, युवाओं जिनका किसी भी तरह का प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष क्रांतिकारियों से संबंध था काला–पानी या काल कोठरी भेज दिया। सुभाष चंद्र बोस कैदी बना दिए गए। आवाम के पुरजोर विरोध के बाद भी गोपीनाथ साहा को फांसी दी गई।

उक्त घटना से बंगाल में क्रांति की प्रगति को गहरा धक्का लगा। तमाम अग्रिम पंक्ति के लीडर जेल भेज दिए गए। ऐसी गतिविधियों पर कड़ी नजर सरकार के खुफिया विभाग द्वारा की जाने लगी। कानून में संशोधन कर उसे और सख्त बना दिया गया था। किसी को जेल भेजने के लिए मात्र संदेश ही काफी था।

पर, बावजूद ऐसी स्थिति में भी बंगाल के चिट्गांव दल के क्रांतिकारियों द्वारा उल्लेखनीय कार्य किया जाता रहा। सरकार की दमनकारी नीति और साधनों की कमी और तमाम विपरीत परिस्थितियों के भी चिट्गांव दल के नेता सूर्यसेन के नेतृत्व में अद्भुत कार्य संपादित किए गए।

सूर्यसेन, ज्ञात है कि गांधीजी के असहयोग आंदोलन के सक्रिय भागीदार थे। चिट्गांव के स्कूल के शिक्षक थे –उन्हें सभी मास्टर दा पुकारते। अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए सन 1926 से 1928 तक बंदी रहे। वे बड़े प्रबुद्ध, मितभाषी और संगठन की शक्ति से ओतप्रोत शक्तिशाली व्यक्तित्व के मालिक थे। मानवता पर उनका बहुत जोर था –वे कहते थे क्रांतिकारियों को मानवतावादी होना चाहिए। यह विशेष गुण है। सेन, काव्य और रविंद्र साहित्य के बड़े प्रशंसक थे। काजी नज़रुल भी उनके प्रिय थे।

सूर्यसेन ने शीघ्र क्रांतिकारियों को संगठित किया जिसमें अनंत सिंह, गणेश घोष और लोकनाथ बाउल प्रमुख थे। योजना बनी कि छोटे पैमाने पर ही सही, मगर आवाम को यह सिद्ध किया जाए कि शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार को सीधी चुनौती दी जा सकती है। चिट्गांव में स्थित दो शस्त्रागारों पर कब्जा करना, चिट्गांव को कनेक्ट करने वाली सेवा सर्विस यथा रेलवे, टेलीफोन, तार सेवाएं काट दी जाए। योजना बारीकी से बनाई गई।

लगभग सैकड़ों क्रांतिकारियों ने अलग–अलग दल बना कर योजना में हिस्सा लिया कुछ अपवाद छोड़ दें तो उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली। इंडियन रिपब्लिक पार्टी चिट्गांव शाखा बंगाल। अप्रैल 1930 को घटना अंजाम देने के बाद सभी क्रांतिकारी चिट्गांव शस्त्रागार में इकट्ठे हुए। यहां सूर्यसेन ने खादी और गांधी टोपी धारण किए विजय का परचम लहराया, मिलिट्री सलाम लिए गए, राष्ट्र–ध्वज फहराया गया, वंदे मातरम और इंकलाब जिंदाबाद के नारे लगे। प्रोविजनल रिवॉल्यूशनरी सरकार की स्थापना की गई।

क्रांतिकारियों द्वारा यह संभव नहीं था कि इस तरह का कब्जा शहरों में भी सफलतापूर्वक कर सकें। नतीजा स्पष्ट था –सारे क्रांतिकारी आस–पास के गांव में भूमिगत हो गए और वहीं से अपनी गतिविधियां गुप्त रूप से संचालित करने लगे। पर, जलालाबाद पहाड़ियों के पास हजारों ब्रिटिश सेना द्वारा उन्हें घेर लिया गया था –दोनों ओर से जबरदस्त मुठभेड़ हुई –जिसमें 80 ब्रिटिश सैनिक मारे गए। इधर बारह क्रांतिकारी शहीद हुए। ज्ञात हो कि चिट्गांव के एक शस्त्रागार में क्रांतिकारी शस्त्र नहीं ढूंढ पाए थे –इसका अभाव बाद में भीषण सिद्ध हुआ।

छोटे–छोटे समूह में बैठकर योजनाबद्ध सरकारी अफसरों को निशाना बनाना और सरकारी खजाना लूटना जारी रहा। सरकार के लिए सर–दर्द, कठोरतम कार्रवाई के बाद भी क्रांतिकारियों की इस गुप्त कार्यवाही पर सरकार पूरी तरह काबू नहीं पा सकी। ग्रामीण जिन्होंने क्रांतिकारियों को शरण दी थी, भोजन और पानी दिया था वे अधिकांश मुस्लिम थे। 3 साल तक अंडरग्राउंड रहकर क्रांतिकारी अपना काम करते रहे, अंततः सूर्यसेन को गिरफ्तार कर लिया गया, 16 फरवरी 1933, ट्रायल हुआ और उन्हें फांसी की सजा हुई। फांसी 12 जनवरी 1934। कई सहयोगी पकड़े गए और लंबे समय के लिए जेल भेजे गए।

प्रसंगवश यह कहना अनुचित नहीं होगा कि कसाब जैसे आतंकवादी जो बेनुगाहों को निर्ममतापूर्वक भून डालता है –उसे फांसी पर चढ़ाते–चढ़ाते 6 वर्ष बीत जाते हैं, इंदिरा गांधी के कातिल को भी लंबे ट्रायल के बाद फांसी दी गई। ये तथ्य अंग्रेजों की हुकूमत और आज की हमारी प्रजातांत्रिक हुकूमत के अंतर को स्पष्ट करता है। ब्रिटिश एक अत्याचारी शासक थे –निर्मम थे, कहने की आवश्यकता नहीं।

चिट्गांव शस्त्रागार की घटना ने बंगाल में क्रांति समर्थक युवाओं को खूब उद्वेलित किया। 1930–31 तक क्रांतिकारी अपने दुस्साहसी प्रयासों से सरकार की नींद हराम कर दी थी। मिदनापुर जिले में तीन ब्रिटिश मजिस्ट्रेट मार डाले गए। दो गर्वनरों पर कातिलाना हमला हुआ। दो इंस्पेक्टर–जेनरल मारे गए। 22 अफसर और बीस गैर–अफसर मारे गए। क्रांतिकारियों के दमन हेतु सरकार ने पुलिस को असीमित अधिकार दिए। पुलिस ने आतंक का राज स्थापित किया। क्रांतिकारियों के जहां गांव में छिपे होने की आशंका होती, गांव जला दिए जाते। समस्त ग्रामवासियों पर जुर्माना किया

जाता। जब तक क्रांति का शमन न हुआ दमन अत्याचार जारी रहा। उसी समय कोलकाता में एक भाषण के वक्त जवाहरलाल नेहरू ने साम्राज्यवाद की भर्त्सना की और क्रांतिकारियों की प्रशंसा। इसी बात पर षड्यंत्र का आरोप लगाकर उन्हें 2 साल की सजा सुनाई गई। हालांकि उन्होंने भाषण में क्रांतिकारियों की सोच को व्यर्थ बताया –पर, क्रांतिकारियों के साहस और देश के प्रति सेवा की प्रशंसा कौन नहीं करता और पुलिस के अत्याचार की भर्त्सना कैसे न की जाती।

खैर, इन तीन वर्षों में क्रांति दल के सहयोगियों के रूप में कई महिला कामरेड पुरुष साथियों के साथ मिलकर कार्य अंजाम दिए। प्रीतिलता, कल्पना दत्ता, कॉमिला, शांति घोष, सुनीति चौधरी, वीणा दास इत्यादि नाम उल्लेखनीय है। संवादों का आदान–प्रदान, शस्त्र–अस्त्र यहां से वहां तक पहुंचाना, क्रांतिकारियों को शरण देना और यहां तक कि इन वीरांगनाओं ने स्वयं कई टुकड़ियों का नेतृत्व किया।

अपने पूर्व के क्रांतिकारी आंदोलन से भिन्न तात्कालिक बंगाल क्रांतिकारी कई बात से भिन्न थी। पहले जहां आंदोलन व्यक्तिगत हीरोइज्म पर केंद्रित था वही अब क्रांतिकारी विचार, एजेंडा और उद्देश्य युवा पीढ़ी को संबोधित था। महिलाओं को इसमें शामिल किया गया ही था, इनका स्वरूप भी धर्म–निरपेक्ष था। बहुत से मुस्लिम नेता क्रांतिकारियों से जुड़े –सत्तार, अमीर अहमद, मियां फकीर अहमद, मियां टूनू प्रमुख नाम है। चिट्गांव के आस–पास के जिन गांवों में क्रांतिकारी शरण लिए हुए थे अधिकांश मुस्लिम बहुल गांव थे। क्रांति दल पहले के सदस्य जहां धार्मिक शपथ लिया करते थे –बंगाल के इस क्रांति दल ने इसे समाप्त कर दिया।

चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, सूर्यसेन जैसे क्रांतिकारियों की शहादत ने पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल के परिदृश्य से युवा क्रांति लगभग समाप्त हो चली। सैकड़ों को काला पानी भेजा गया, लंबे समय के लिए जेल या आजीवन कारावास से युवा शक्ति क्षीण हो चली। बचे हुए उत्साही युवाओं ने अधिकांशतः कम्युनिस्ट पार्टी, रिवॉल्योशनरी सोशलिस्ट पार्टी व अन्य वामपंथी पार्टियों में शरीक हो गये। बहुतों ने कांग्रेस अंगीकार किया।

प्रसंग आया है इसलिए मीमांसा जरूरी लगती है। प्रश्न उठाये जाते हैं कि जिन क्रांतिकारियों, खासकर बंगाल के क्रांतिकारी जिन्होंने तीन साल तक ग्रामीणों के साथ घुल मिलकर अपने कार्य संपादित करते रहे –आखिर वे गरीब किसानों, कामगारों को स्थानीय जमींदार से क्यों मुक्त नहीं करवा पाए। मार्क्सवाद या समाजवादी अवधारणा की ओर आकर्षण बहुत कम दिखता है। जात–पात बरकरार रहा, कृषकों के लिए सहानुभूति होते हुए भी जमींदारों से मुक्त नहीं कर पाए।

स्थिति पर गौर करें तो चिट्गांव प्रकरण एक ऐसी मिसाल है जो भारत में मार्क्सवादी एजेंडे को हू–ब–हू लागू करने के अव्यवहारिक तथ्यों की ओर इशारा करता है।

क्रांतिकारी गुप्त रूप से उस वक्त की शक्तिशाली सरकार से लोहा ले रहे थे। ब्रिटिश उनके पहले शत्रु थे। मार्क्स के पूंजीपति अथवा यहां अनुदित जमीदार सेकेंडरी अथवा हाशिए पर थे।

बहुत से जमींदार, स्थानीय राजा और देशी पूंजीपति सीधे या गुप्त रूप से देश की विभिन्न पार्टी, कांग्रेस अथवा स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय थे –आर्थिक सहयोग दे रहे थे। यह दुविधा थी। सिद्धांत और व्यवहार में फर्क होता है और मार्क्सवाद की मूल जमीन नगरीय औद्योगिक इलाका था –हर देश–काल की परिस्थितियां भिन्न थी। दूसरे, परंपराएं यूं चुटकियों में नहीं बदलती। वर्षों समझने में लगते हैं। बंगाल क्रांति में स्त्रियों का आगे आना, मुस्लिमों का सहयोग और कार्यकर्ताओं द्वारा धार्मिक शपथ खत्म करना –ऐसे प्रसंग अपने समय से बहुत आगे थे। कमोबेश मार्क्स का अध्ययन पश्चिम और रसिया की क्रांति ने स्वतंत्रता, समानता, आर्थिक–सामाजिक आजादी जैसे विषय पर गौर करना सिखाया। भगत सिंह जेल से ही अपने विचार 'फिलोसॉफी ऑफ बम' तथा 'मैं नास्तिक क्यों हूं' –जैसे लेख लिखकर अपने प्रगतिशील विचार से युवाओं को प्रेरित करते रहे थे। अपने समय के सबसे अधिक पढ़ाकू विद्वान और प्रबुद्ध क्रांतिाकारी भगत सिंह मार्क्सवादी परिकल्पना से समाजवादी समाज को अपना आदर्श मानते थे।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए की तब मार्क्स से प्रेरित क्रांतिकारी सरकार से सीधे पंगा ले रहे थे और मार्क्सवादी आर्थिक, सामाजिक समानता, आवाम की एकता इत्यादि को समझने और समझाने के लिए खुला मंच चाहिए था। गुप्त संगठन जिसका एकमात्र मिशन साम्राज्यवाद का सफाया था –पूंजीवाद या देश में जाति प्रथा जैसी समस्या निश्चित रूप से गौण रहे होंगे, संभवत इसका अवसर नहीं था।

(आलेख में प्रयुक्त घटनाएं और तथ्यों के लिए 'इंडिया स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस' –बिपन चंद्रा लिखित पुस्तक से साभार)

13–नेहरू एवं मार्क्सवाद

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि रसिया में बोलशेविको की सफलता और विश्व युद्ध की समाप्ति पर पूर्वी यूरोप और एशियाई देशों में मार्क्सवाद का विचार प्रबल हो उठा। साम्राज्यवाद से मुक्ति के साथ–साथ औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न नये किस्म के पूंजीपतियों से मुक्ति और कामगारों की एकता, समानता हर समाजवादी का लक्ष्य हो चला था। भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद जैसे नायको द्वारा देश में सरजमीं के लिए जज्बे के साथ–साथ सामाजिक एकता और समाजवाद की वकालत भी की गई। भगतसिंह द्वारा प्रस्तुत अपने विचार हिंदू–मुस्लिम एकता अथवा संप्रदायवाद के खतरे को काफी पूर्व पहचान लिया गया था। जेल से लिखे पत्रों में वे देशवासियों को इस ओर आगाह करते हैं। उन्होंने यह भी राय व्यक्त की कि युवा क्रांति यथाशीघ्र व्यक्तिगत कुर्बानी की राह छोड़कर आवाम को समाजवाद की राह में अग्रसर करें। खैर!

सन 1920 से 1930 के बीच भारत के स्वतंत्रता इतिहास में आ रहे घटनाओं के साथ साम्यवाद का विचार भी फलित होना उल्लेखनीय घटना थी।

सवाल उठता है कि देश में समाजवादी विचारधारा इतनी पुरानी और मार्क्स के मूल विचार को यहां की जमीन में लागू करने की उत्कंठा और अवसर दोनों थे –तथापि मार्क्सवाद को देश की जमीन में वांछित सफलता नहीं मिल पाई।

इस पर मीमांसा आवश्यक है।

यह बता देना आवश्यक है कि कांग्रेस जो कि हिंदुस्तान को मुक्त करने का एक प्रभावी मंच था और नेहरू–सुभाष जैसे लोकप्रिय नेताओं का साम्यवादी विचार की वकालत थी, समर्थन था –बावजूद मार्क्सवाद इम्तिहान में अच्छे अंक नहीं ला पाया। यह सवाल विचलित करने वाला है।

सन 1930 तक सारा देश गांधी जी के तरीकों से लगभग नाखुश था। असहयोग आंदोलन असफल हो चला था। स्वराज्य दल के हिस्से भी वही पुराने अनुनय–विनय–प्रार्थना की नीति थी। विश्व आर्थिक मोर्चे पर महान मंदी के दौर से गुजर रहा था। विश्व के साथ–साथ भारत के शहरों में भी बेरोजगारी और पूंजीवादी पद्धति की कटु आलोचना मार्क्सवादी नजरिए से विश्व के पूंजीवादी राष्ट्रों में भी होने लगी थी। समाजवादी विचार कांग्रेस के भीतर इतना प्रबल हो चला था कि 1936–37 में कांग्रेस के अध्यक्ष नेहरू चुने गए, सन 1938–39 में सुभाष चंद्र बोस। यही नहीं कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जन्म भी हो चला था।

अखबारों और जर्नल के मार्क्सवादी विचार संपूर्ण देश में फैल रहे थे। श्री डांगे ने मुंबई से पम्फलेट प्रकाशित किया –'गांधी एंड लेनिन'। 'द सोशलिस्ट' –एक साप्ताहिकी का प्रकाशन नियमित किया। मुजफ्फर अहमद बंगाल में 'नवयुग', पंजाब में गुलाम हुसैन एवं अन्य द्वारा 'इंकलाब' मद्रास में एम. सिंगरावेलू 'लेबर–किसान गजट' प्रकाशित किए। उसी तरह कालेजों में विद्यार्थी–युवा एसोसिएशन स्थापित किए गए। सुभाष और नेहरू ने देश भर की सघन यात्राएं की और साम्राज्यवाद–पूंजीवाद, जमींदारी के विरूद्ध लोगों को जागृत किया। समाजवादी आदर्श बताए। 1920 के बाद से ही ट्रेड यूनियन और किसान आंदोलन सक्रिय रहे।

नेहरू, जो कि गांधी के बाद सबसे लोकप्रिय नेता थे –अपनी पुस्तक 'ऑटो बायोग्राफी और गिलिम्पेसेस ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री' में तथा जेल से लिखे पत्र व्यवहार में मार्क्सवादी मेथड से सामाजिक समानता की अहमियत उल्लेखित करते रहे। उनका अभिमत स्पष्ट था कि सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल हो भी जाए तो समाज में जो आंतरिक भेद हैं विशेषकर अगड़े वर्ग द्वारा छोटे वर्ग का शोषण –और जब तक यह भेद खत्म नहीं होता पूर्ण स्वतंत्रता संभव नहीं। नेहरू किसानों के आंदोलन में भाग ले चुके थे और उनमें निहित आर्थिक पहलू को पृथक नजरिए से देखने लगे थे। सन 1927 में उन्होंने सारे विश्व से इकट्ठा हुए साम्राज्यवादी विरोधी सम्मेलन जो कि ब्रसेल्स में हुआ था –सम्मिलित हुए। कोने–कोने से उपनिवेश विरोधी नेताओं के संपर्क में आए। उसी वर्ष उन्होंने सोवियत रसिया की यात्रा की और वहां के समाजवादी समाज से अत्यंत प्रभावित हुए। अपनी वापसी उपरांत 1929 लाहौर सेशन में स्पष्ट अभिमत प्रस्तुत किया जिसमें समाजवादी समाजवाद –गणतंत्र पर उनका विश्वास असंदिग्ध था। वहीं सामंती प्रथा की भर्त्सना की। भारत में समाजवादी आदर्श की नींव रखनी होगी यदि आवाम गरीबी और असमानता से मुक्त होना चाहता है तो।

ज्ञात हो कि कांग्रेस में पूंजीपति, जमींदार, श्रमिक, खेतिहर के बीच सामंजस्य रखना एक चुनौती सी बन गई थी। कांग्रेस की चुनौती इस देश की चुनौती थी।

आवाम के नब्ज को समझना अथवा आवाम की जरूरतों को समझना –यह खासियत हो और जनमत का निर्माण हो, जनता की शक्ति साथ हो –यही एक लीडर की पहचान हो सकती है। अगर उक्त परिभाषा को माने तो गांधी और नेहरू दोनों ही जनता के नेता थे। लीडर। जनता उनकी आवाज सुनती थी और बदले में लीडर जनता की आवाज बनते थे। दूसरे अर्थ में कहा जाए कि जब लीडर और अवाम के विचार, विचार प्रणाली में भेद खत्म हो जाता है तो जिसे कहते हैं कि आवाम अपना पूर्ण विश्वास, पूर्ण समर्पण प्रदान करता है। कुछ मुद्दों पर असहमतियां हो सकती हैं, जैसा कि हम गांधीजी की अहिंसा पर अत्यधिक जोर देने के मामले में देखते हैं –फिर

भी उनकी आलोचना करना या उनके विरुद्ध हो जाना कतई आसान ना था। पर, इतना स्पष्ट है कि असहयोग आंदोलन के बाद से ही गांधियन मेथड पर से आंशिक ही सही, मगर मोह–भंग की स्थिति उत्पन्न हुई थी। तब भी, कांग्रेस संपूर्ण देश की एक मात्र संस्था थी जिसके तहत गांधी जी की पुकार पर उत्तर–दक्षिण और पूरब–पश्चिम से आवाम एकजुट हो जाता था।

नेहरू यद्यपि समाजवादी, मार्क्सवादी विचार प्रक्रिया को समझ चुके थे और देश के समक्ष राजनीतिक आजादी के साथ –साथ सामाजिक आजादी की प्राप्ति भी एक उल्लेखनीय पहलू हो चला था। नेहरू ने बड़े शिष्ट विचारों से अपनी बात देश व गांधी जी के समक्ष रखा, देश में पूंजीपतियों, जमींदारों का हित और किसानों, कामगारों का हित पृथक था, इसे स्पष्ट किया। नेहरू ने गांधी जी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को सीधा खारिज किया और मार्क्सवादी भौतिक द्वंदवाद को अधिक सार्थक, सही माना। गांधीजी व्यक्तिगत संपत्ति को समाज का ट्रस्टी होने के नाते समाज की संपत्ति समझते थे मगर मालिकाना हक ऐसी सम्पति पर व्यष्टि का ही था। दूसरी ओर मार्क्सवाद ऐसी संपत्ति को वैज्ञानिक तरीके से समाज के घटकों के बीच वितरित किए जाने का विकल्प प्रस्तुत कर चुका था। सोवियत रसिया इसका सुंदर उदाहरण था।

वैचारिक स्तर पर आखिर नेहरू ने क्या किया ? क्या उन्हें कांग्रेस से पृथक हो अपने पीछे खड़ी आवाम को जागृत करने के लिए अलग पार्टी बनानी चाहिए थी ? फिर कांग्रेस को देशव्यापी समर्थन का क्या होता ? कोई भी नया दल तत्काल देशव्यापी नहीं बन जाता, खासकर तब जब सीपीआई जैसी पार्टी की स्थापना देश में 1920 के आसपास ही हो गयी थी। अथवा नेहरू वाम–दक्षिण की बहस में कांग्रेस को भीतर से तोड़ देते और कांग्रेस कमजोर कर देते ?

नेहरू जी ने ऐसा कुछ नहीं किया और लेखक की व्यक्तिगत राय है कि उक्त परिस्थितियों में नेहरू ने सही फैसला लिया। जो जनाधार कांग्रेस को प्राप्त था उसी जनमत को समाजवाद की वैज्ञानिक प्रक्रिया से देश को भावी समय में ले जाना था –राजनीतिक–आर्थिक व सामाजिक रूप से स्वतंत्र और अधिक प्रबुद्ध, अत्याधिक सहनशील, उदार प्रजातांत्रिक देश!

एक शंका यहां उठ जानी चाहिए कि यदि नेहरू और सुभाष चाहते तो कांग्रेस को राइट–लेफ्ट दो फाड़ कर सकते थे ?

एक तरफ गांधी जी की शख्सियत तो दूसरी ओर नेहरू–सुभाष और अन्य युवा क्रांतिकारी ?

आवाम का क्या होता ? वह किस तरफ जाती ? भारत का स्वतंत्रता आंदोलन क्या कमजोर नहीं होता ? गरीबी से जूझ रहे करोड़ों किसान और कामगार अपनी मुक्ति के लिए कहां जाते ?

14–भारत में मार्क्सवादी पार्टी : एक संक्षिप्त नजर

कांग्रेस के भीतर विचारों को लेकर दो विपरीत धाराएं शुरू से मुखर थी। सुधारवादियों के तरीके से लोकमान्य तिलक और लाला जी के तरीके भिन्न थे। बहिष्कार और स्वदेशी जैसे तरीके बंग–भंग के पूर्व तिलक आजमा चुके थे। ब्रिटिशों की हड्डी चटका दी थी –बाद में गांधी जी ने अहिंसात्मक रूप से उसी बहिष्कार और स्वदेशी का बिगुल फूंका था। सन 1920 के बाद क्रांतिकारियों की गतिविधियां और 1930 के आते–आते वैज्ञानिक द्वंदवाद और समाज–अर्थ की मुक्ति भी कांग्रेस से अभिव्यक्त होने लगी थी। विचारों की भिन्नता के साथ यह तय था कि आवाम के समक्ष राजनीतिक–स्वतंत्रता प्रथम लक्ष्य थी। चाहे जितने भी किसान–आंदोलन अथवा ट्रेड–यूनियन बने सबकी अपनी सीमित मांगे थीं और आजादी अथवा आर्थिक –सामाजिक सामंजस्य दूर की कौड़ी ही रही थी। यह भी गौर करने लायक है कि विचार वह भी तार्किक, वैज्ञानिक रूप से आवाम तक पहुंचने के लिए एक शिक्षित समाज की आवश्यकता थी। मार्क्सवाद की जन्मभूमि और रसिया के लोग और भारत के करोड़ों अशिक्षित, गरीब किसान और आधे पेट फैक्ट्री के मजदूर वैज्ञानिक द्वंदवाद को कितना समझते। और हमारे नेता उन्हें कितना समझा पाते ? इस पहलू को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। वैसे भी, भारतीय आवाम भावना तो समझती है तार्किक तो वह आज भी नहीं है। खैर!

एम. एन. राय की अध्यक्षता में 1920 में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना हो चुकी थी। प्रारंभ में साम्यवादी ताकतों ने एक महत्वपूर्ण काम यह किया कि इसने किसानों और कामगारों को संगठित किया। लेबर–स्वराज पार्टी, कांग्रेस लेबर पार्टी, कीर्ति किसान पार्टी, लेबर किसान पार्टी प्रमुख संगठन थे। 1928 में सभी संगठन एक दल के तहत नामांकित किए गए –वर्कर्स एंड पीजेंट्स पार्टी, यह अखिल भारतीय स्तर का संगठन था जिसकी शाखाएं राजस्थान, उत्तर प्रदेश और दिल्ली में भी खोली गईं। सभी मार्क्सवादी समर्थक इसके सदस्य थे और जिन्होंने कांग्रेस के भीतर रहकर समाजवादी विचार और क्रांतिकारी तरीकों से देश को आजादी, तदुपरांत एक आदर्श समाज की रचना का लक्ष्य रखा।

नेहरू और बोस ने इनका खुलकर समर्थन किया और कांग्रेस के भीतर वामपंथी विचार प्रेषित करने, प्रसारित करने में अहम भूमिका निभाई।

कामगार एवं किसान पार्टी (वर्कर्स एंड पीजेंट्स पार्टी) की

तीव्र प्रगति ने ब्रिटिश सरकार के होश उड़ा दिये। बिटिश मालिकों, पूंजीपतियों द्वारा एशिया और भारत के विभिन्न हिस्सों में बागानी खेती की जाने लगी थी, असम के चाय बागान उदाहरण थे। समाजवादी विचार प्रेरित किसानों–मजदूरों की यूनियनें उनकी लगातार उठ रही समानता और शोषण के विरूद्ध हो रहे मामले हाशिये पर रखे जाने योग्य नहीं रहे थे। भारत कच्चे माल का निर्यातक था और लंदन, यूरोपीय देशों की फैक्ट्रियों की जरूरतें समय पर पूर्ण ना होने पर आर्थिक दबाव पड़ना लाजिमी था। ब्रिटिश हुकूमत जैसा कि उसका साम्राज्यवादी चरित्र था, ऐसे मौकों पर दमन की नीति का सहारा लेती थी।

1924 में ही नवजात साम्यवाद पर प्रहार करने के उद्देश्य से सरकार ने साम्यवादी नेता श्री डांगे, मुजफ्फर अहमद, नलिनी गुप्ता, शौकत उस्मानी को कानपुर वोल्वोशिक षडयंत्र में 4 वर्षों की कैद सुनाई। 1929 के आते–आते पूंजीपति जहां विश्व की महान मंदी झेल रहे थे वही वंचितों के यूनियन और उठते समानता के सवाल ने हुकूमत की जमीन हिला दी। दमन चक्र जारी रहा। बल्कि और तीव्र हुआ। 30 के ऊपर साम्यवादियों को, जिसमें तीन तो अंग्रेज साम्यवादी थे –फिलिप स्प्रॉट, बेन ब्रेडले और लेसर हचिंसन, उन सभी को मेरठ षड्यंत्र कांड में अभियुक्त करार दिया गया।

हुकूमत चाहती थी कि ट्रेड यूनियन और मार्क्सवाद कुचल दिए जाएं। विचार प्रसारित न हो, मगर हुआ इसके विपरीत। राष्ट्रीय माने हुए नेताओं ने जिसमें जवाहरलाल नेहरू सरीखे बैरिस्टर भी थे –ने कैदियों की वकालत की। गांधी जी स्वयं मेरठ जेल पहुंचकर कैदियों से मुलाकात की और कैदियों के एजेंडे और उनकी रिहाई, आगे के आंदोलन का हिस्सा होने का आश्वासन दिया। कैदी साम्यवादियों द्वारा अपने डिफेंस में व्यक्त विचार अखबारों के जरिए सारे देश में चर्चित रहे। साम्यवादी विचार प्रबल और प्रखर हो चुका था। हालांकि महत्वपूर्ण नेताओं को बंदी बना लिए जाने के कारण ट्रेड यूनियन और तत्संबंधी साम्यवादी विचार को झटका लगा।

प्रसंगवश यहां उल्लेखित करना समीचीन होगा कि यह साम्यवादी विचार का ही प्रभाव था कि इस विचार ने 'राष्ट्र' की अवधारणा बदल कर रख दी थी। एक कामगार, दलित–पीड़ित चाहे वह मेनचेस्टर के कपड़ा मिल मालिकों के शोषण का शिकार हो या एक भारतीय मजदूर संघ के बागानों में अपने अधिकारों से वंचित–शोषित, अर्थात दुनिया के शोषित–वंचित एक मंच पर आ चुके थे। पूंजीवाद चाहे लंदन का हो या भारत अथवा अमेरिका का –उसका खात्मा इनका लक्ष्य। यह बहुत व्यापक तब्दीली थी और इस विचार ने राष्ट्रीय सीमाओं का उल्लंघन कर विश्वव्यापी चरित्र अख्तियार कर लिया था।

मार्क्स को नमन!

उसी वक्त, एन अपने उत्कर्ष पर भारतीय साम्यवाद ने सैद्धांतिक मार्क्स के प्रभाव में अथवा अन्य कारणों से साम्यवादियों ने कांग्रेस से अपना नाता तोड़ लिया। यही नहीं, इसने कांग्रेस को बुर्जुआ ताकतों के अधीन संगठन होना बताया और समाजवादी विचारों का दुश्मन। नेहरू और सुभाष जैसे वामपंथी विचारकों को 'पूंजीपतियों का एजेंट' घोषित किया गया। गांधी जी द्वारा पूर्ण स्वराज्य की घोषणा को बुर्जुआ के अधीन होना बताया और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौतापरस्ती कह कर निंदित किया। गांधी–इरविन समझौता देश के साथ धोखाधड़ी ही था।

मार्क्सवादी पार्टी ने दो कदम आगे बढ़कर अपने पांव में कुल्हाड़ी और मार ली कि वे वर्कर्स एंड पेजेंट्स पार्टी को बुर्जुआ का समर्थन प्राप्त है अतः इस पार्टी को ही भंग कर दिया जाए।

यहां ठहरना, विचारना जरूरी है।

ऐसा क्यों किया जाता रहा ?

आज देश में मार्क्सवाद के अप्रसार के लिए ऐसी नीतियां, ऐसे कदम के लिए ऐतिहासिक गलतियां क्या सुधारी जा सकती है ? इसे मूर्खता कहें विद्रूपता को हम किस दृष्टि से देखें ?

मीमांसा जरूरी है ताकि हम अपनी गलती आगे न करें। हम इतिहास से सीखें और आगे बढ़ें।

वह कौन सा समय होगा जो पीढ़ी अपने इतिहास से कटकर प्रगति कर ले। वह प्रगति खोखली होगी जो अपनी जमीन की सच्चाई नहीं जानती–समझती। वह बुद्धीजीवी क्या जो बीते समय और अपने समय के सच को देख–समझ ना पाए। हम इतिहास इसलिए नहीं पढ़ते समझते कि वह हमारा मनोरंजन करता है, हम इतिहास में अपना अक्स ढूंढते हैं। अपने पूर्वजों के अच्छे कर्मों के प्रति आभार प्रकट करते हैं, वहीं उनकी गलतियों से सीख लेकर आगे बढ़ते हैं। क्योंकि हम अंधकार युग में पुनः नहीं जाना चाहते।

विचार करें, आप या आपका मित्र जो छुआछूत का मारा है, ऊंचे तबके के लोग आपकी छाया से भी दूर भागते हों!

थोड़ा ठहरें और विचार करें कि क्या यही समाज हमारे वेदों, उपनिषदों ने हमारे समक्ष रखा है ? और इस तरह का मनुष्य का मनुष्य पर भेद! यह किस मनुष्य की कहानी है ?

खैर!

बात मार्क्सवादी राजनीतिक प्रगति की हो रही थी। रोचक तथ्य यह था कि पार्टी के महा–विद्वानों को लगा कि कामगार और किसान दो पृथक पृथक क्लास (वर्ग) है और पार्टी को पूंजीपतियों–जमींदारों (बुर्जुआ) का समर्थन प्राप्त है –अतः भंग किया जाए।

सिद्धांत या विचार को मैग्नीफाइंग ग्लास से देखने का नतीजा! जीवन की समस्या को ग्रंथ में ढूंढ कर समाधान करने का अंदाज!

बिना देश की परंपरा इतिहास को समझे और कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की मीटिंग मास्को इत्यादि में अटेंड करके तात्कालिक देशी मार्क्सवादियों ने मार्क्सवादी राजनीतिक प्रगति की भारी क्षति की।

सन 1930 के पश्चात मार्क्सवादी समाजवाद की अवधारणा इतनी तेजी से लोकप्रिय हो रही थी –नेता चाहे कांग्रेस के लीडर हो या सीधे–सीधे किसी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य, कहीं ना कहीं से सामाजिक–आर्थिक स्वतंत्रता की अवधारणा के प्रबल समर्थक थे। आवाम इस बात को समझ चुकी थी। किसान सभा और ट्रेड यूनियनों की एकता ने ब्रिटिश सरकार को कई बार बैकफुट पर ला दिया था। ऐसे वक्त, सिद्धांतों की पेलम–पेल में कम्युनिस्ट पार्टी आफ इंडिया ने कांग्रेस से ही नहीं डब्ल्यू पी पी (वर्कर्स एंड पेजेंट्स पार्टी) जैसा कि ऊपर बताया गया है –ऐसी पार्टी थी जो सारे भारत में सक्रिय थी जिसकी प्रायः सभी वामपंथी विचारक इसके सदस्य थे और पार्टी के बैनर तले कई–कई मांगे, हड़ताल और सरकार के रास्ते सफलतापूर्वक अवरोध–गतिरोध उत्पन्न किया जा चुका था।

सीपीआई स्वयं को अकेला कर लिया। कांग्रेस से पृथक, नेहरू–सुभाष की आलोचना, कांग्रेस को पूंजीपतियों का संगठन, साम्राज्यवाद से समझौतापरस्ती, मजदूरों–किसानों के शत्रु! इसका नतीजा यह हुआ कि देखते–देखते कम्युनिस्ट पार्टी कई तबकों में बंट गई। छोटे–छोटे दल उग आए। ब्रिटिश सरकार ने मौके का फायदा उठाया और सन 1934 में सीपीआई को अवैध घोषित कर दिया!

लघुकथा–महेश राजा

याददाश्त

भाई साहब कह रहे थे, क्या बात है, आजकल कुछ याद नहीं रहता..बात करते–करते भूल जाता हूं.....किसी को बहुत दिनों बाद देखता हूं या मिलता हूं तो पहचानने में मुश्किल होती है।

मैंने उन्हें समझाया कि ऐसा थकान या बेवजह तनाव के कारण होता है। साथ ही वह बात जो दिल पर घाव या चुभन नहीं छोड जाती, हमारी याददाश्त से बाहर हो जाती है।

भाई साहब उम्र में मुझसे काफी बड़े है। 76 वर्ष पार कर चुके है लेकिन मुझसे मित्रवत व्यवहार करते है। मैंने कहा–"सुबह शाम दूध के साथ बादाम लीजिए....याददाश्त के लिये फायदेमंद होगा।

भाई साहब दार्शनिक अंदाज में हंसे, फिर बोले,–"दूध बादाम से कुछ नहीं होने वाला। मैं तो यह सोच रहा था कि इंसान की पूरी याददाश्त ही खो जाये तो कितना अच्छा हो....जिन्दगी की सारी कटुता इस याददाश्त की वजह से ही तो है।"

15–पी.सी. जोशी एवं जय प्रकाश नारायण

सन 1935 में पी.सी. जोशी ने मार्क्सवादियों को पुनर्संगठित किया समाजवादियों तथा अन्य वाम विचारकों को एकत्र कर यूनाइटेड फ्रंट की स्थापना की। एक बारगी पार्टी की हैसियत से मार्क्सवादी दल ने राष्ट्र के आंदोलन में कांग्रेस का समर्थन किया। सभी वामपंथियों का आह्वान कर कांग्रेस की सदस्यता स्वीकार करने की अपील की गई। 1938 तक इसने स्वीकार किया कि देश की संस्था कांग्रेस ही है जो साम्राज्यवादी ताकतों से निजात दिला सकती है। 1939 में पी.सी. जोशी ने अपने साप्ताहिक –'नेशनल फ्रंट' में यह अद्‌भुत बात कही कि राष्ट्र का संघर्ष ही वास्तविक देश संघर्ष है....। (अर्थात सिद्धांत के अनुसार वर्ग संघर्ष से बढ़कर)

और यह व्यवहारिक बात थी, समय–सापेक्ष। जब शरीर में दो और चार या आठ कई बीमारियों के लक्षण हो तो डॉक्टर सबसे पहले घातक और तीव्र पीड़ा पहुंचाने वाली बीमारी का इलाज करता है ताकि मरीज को राहत मिले। मार्क्स के सिद्धांतों के तहत वर्ग और जाति और स्त्री एजेंडे इत्यादि से बढ़कर ब्रिटिश हुकूमत, तानाशाही और दमन की नीति तब का प्रबल रोग था।

इस प्रकार जोशी के नेतृत्व में सारे वामपंथी एक बार फिर कांग्रेस को भीतर से समर्थन देते रहे। 1936 से 1942 के अंतराल में उनके प्रयास से केरल, आंध्र, बंगाल और पंजाब में शक्तिशाली किसान आंदोलन हुए।

एक बार फिर वामपंथी विचार लोगों के बीच लोकप्रिय हुआ।

1921 के असहयोग आंदोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेने वाले उत्साही युवा नेताओं को हुकूमत ने लंबी सजा दी। जेल में राष्ट्रवादी विश्व की गतिविधियों से अवगत होते रहे, मार्क्स को विशेष रूप से। कई युवा सीपीआई के कार्य व्यवहार से असंतुष्ट थे –वे एक पृथक सोच रखते थे। विचार मार्क्स के तहत ही था, पर देश–काल–सापेक्ष राजनीति तैयार करने और समाजवादी सोच की दिशा मजबूत करने के उद्देश्य से जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेंद्र देव और मीनू मसानी के नेतृत्व में 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की गई।

कांग्रेस सोशलिस्टों के बीच इस बात पर सहमति थी कि समाजवाद लक्ष्य है, मगर राष्ट्रवाद के रास्ते। अर्थात पहले राष्ट्र की मुक्ति। सामाजिक आदर्श प्राप्त करने हेतु राष्ट्रवाद एक प्रक्रिया है। सभी नेता इस बात से सहमत थे कि कांग्रेस के मंच से ही उन्हें अपने लक्ष्य हासिल करने हैं। कांग्रेस को कमजोर करके नहीं, मजबूत करके। इस बाबत् किसानों और कामगारों को एकत्र करके कांग्रेस की दिशा समाजवादी आदर्श की ओर ले जाना। कांग्रेस को मजबूत करना और

कांग्रेस की दिशा वाम की ओर ले जाना। जयप्रकाश नारायण ने स्पष्ट कहा था कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम प्रयास करेंगे और असफल होने पर भी करते रहेंगे, मगर कांग्रेस से बाहर हम जाने की नहीं सोच सकते।

सोशलिस्ट की हैसियत से वाममार्गियों के समक्ष चुनौती थी कि कांग्रेस की लीडरशिप उनके चुने हुए नेता हों हालांकि 1936 से 1940 तक नेहरू–सुभाष के रूप में कांग्रेस के भीतर वाम विचार अपनी जीत दर्ज करा चुका था। उसकी लोकप्रियता नेताओं और आवाम के बीच असंदिग्ध थी, फिर भी वे सीपीआई जैसा कि पूर्व में स्वयं को अकेला कर अपने आप को निरीह कर लिया था –इसे देखा जा चुका था। जयप्रकाश नारायण और उनके साथियों ने निश्चित ही ऐसी गलती नहीं दोहराई। हालांकि नेहरू के साथ–साथ अन्य समाजवादी अच्छी तरह जानते–समझते थे कि अब भी पूरे देश को आह्वान करने की क्षमता एकमात्र गांधी में थी। उनके ऐलान पर चाहे पूंजीपति हो या कामगार या किसान, सभी दौड़े चले आते थे। यहां तक कि कई वामपंथी अपनी पृथक सोच रखने के कारण भी गांधी की उपेक्षा करने की स्थिति में नहीं थे। उन्हें सभी का आदर प्राप्त था। वे करिश्मायी शख्सियत के मालिक थे। गांधी का विकल्प स्वयं गांधी थे। आंदोलन सफल होने पर भी अथवा असफल होने पर भी।

वाम विचारकों के तमाम प्रयास, बहस, विचार–विमर्श और क्रियात्मक मंथन उपरांत भी नतीजा वही पहुंचता जहां से गांधी नाम का सवाल उठता। अर्थात वाम का यह विचार कि कांग्रेस को मार्क्स के आदर्शों के तहत मोड़ कर लीडरशिप भी मिलिटेंट नेता जैसा कि सुभाष का व्यक्तित्व था (यह लेखक की निजी राय है) उन्हें सौंपी जाए।

और यह संभव नहीं हो सका क्योंकि सीधे अर्थों में आवाम गांधी के साथ थी। गांधी–सुभाष तनाव अर्थात इसे दक्षिण–वाम विचारों का संघर्ष इस कदर बढ़ा की 1939 की अध्यक्षता सुभाष बोस 1377 मत के विरुद्ध 1580 मत प्राप्त कर की –गांधीजी के प्रतिनिधि पट्टाभी सीतारमैया की हार गांधी ने अपनी हार होना स्वीकारा। उन्होंने खुलकर इसका विरोध किया –यहां तक की सुभाष बोस को कांग्रेस छोड़ फारवर्ड ब्लाक बनाने पर विवश होना पड़ा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि विचार के स्तर पर मार्क्सवादी एजेंडे के समर्थक कांग्रेस में किस कदर लोकप्रिय हो रहे थे और गांधियन विचार, मेथड लगातार सवालिया निशान बन रहे थे।

गांधी जी के इस कार्यवाही पर पृष्ठभूमि में गांधियन मेथड के विरोधी किस कदर उनकी फजीहत किए होंगे –समझा जा सकता है। और हम सब बहुत से मामलों में देखते हैं कि जैसे–जैसे स्वतंत्रता संग्राम अंतिम डगर की ओर बढ़ रहा था गांधी जी के अडियल रवैये के कारण उन्हें काफी दुर्गति भी झेलनी पड़ी होगी। इसे हम प्रमाणिक नहीं मान सकते और प्रमाण की आवश्यकता भी नहीं –पर कहते हैं बिटवीन द लाइंस..... अर्थात कुछ बातें समझने की होती है। कुछ बातें अनुत्तरित रहती है। भरी सभा में द्रोपदी को नंगा किया जा रहा था –कितना और कैसा....., ऐसे सवाल पूछने की इजाजत कलम और रोशनाई नहीं देते!

फिलहाल, गांधीजी तब भी आवाम के प्रतिनिधि थे –यह निर्विवाद था।

नेता रोज नहीं पैदा होते और कुछ स्थितियां–परिस्थितियां होती हैं जिनसे कोई–कोई लीडर उभरता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जैसा कि गांधीजी प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भी अपना मत प्रकट कर चुके थे –हुकूमत को तंग न करना, फिर डोमिनियन स्टेट्स की स्थापना, गांधीजी का अहिंसा पर जोर इत्यादि ऐसे मामले थे जिनकी वामपंथियों द्वारा लगातार आलोचना की जाती रही। सच तो यह है कि वामपंथी गांधियन मोर्चे को बिल्कुल नहीं समझ पाए। उनका चश्मा मार्क्स थे और चीन की मिलिट्री सेना, जिनकी ताकत से विदेशियों को भगाना था। पूंजीपतियों से धन छीनकर व्यक्तिगत संपत्ति की अवधारणा ही खत्म करनी थी।

यह सारे अवधारणात्मक पहलू थे जिनसे अवाम का रिश्ता दूर की कौड़ी था। आवाम तो भूख और रोजी की समस्या से निजात मिले –यही सवाल उसके समक्ष प्रबल था। आवाम जानती थी –हुकूमत ही इसके लिए जिम्मेदार है और गांधीजी हुकूमत को विवश करने वाले उनके एकमात्र नेता! आवाम वर्ग–संघर्ष और निजी संपत्ति –स्टेट कंट्रोल जैसी चीजों से दूर थी। बहुत दूर.....!

वाम नेता देश की नब्ज टटोलने में असमर्थ थे –हां उन्होंने कांग्रेस और देश के भीतर एक सवाल जरूर खड़ा किया और सच में कि समाज कोढ़ग्रस्त था। बीमार! प्रेमचंद ने उस समाज का अद्भुत चित्रण कफन, ठाकुर का कुआं, सद्गति इत्यादि में कर चुके थे। किसान, किसानी छोड़कर मजदूरी करके खुश हो रहे थे। (पूस की रात) और हमारी सामंती वीरभद्र 'शतरंज के खिलाड़ी' में शानदार शहादत के साथ चित्रित थे। इतिहास आईने की तरह हमारा चेहरा दिखा रहा था –मार्क्सवादियो ने सिद्धांत पढ़ा –आवाम का चेहरा नहीं! उसे महंगे और सुंदर सूट–बूट पहना देने से हमारे लंगोटी किसान समृद्ध नहीं हो जाते! विचार का चोला धारण कर लेने मात्र से फूल, फल नहीं दे देते। प्रतीक्षा और समय की नब्ज को समझने की जरूरत थी –जो कि वाम नेता ऐसा नहीं कर पाए।

वहीं गांधीजी के सारे प्रयास आवाम की मजबूरी, दुर्दशा,

मनोदशा देख समझ कर था। वह आरोपित विचार नहीं था। वह भीतर से उत्पन्न था। एक प्रतिज्ञा थी। 'सत्याग्रह' –सत्य पर अड़े रहना।

और उनका सत्य क्या था ?

वामपंथी अपने विचार और एजेंडे में भी एकमत नहीं थे। साम्यवादी पार्टी समाजवादियों से भय खाती थी, वहीं वामपंथ में अनगिनत गुट और दल थे। यहां तक कि सुभाष और नेहरू दोनों ही मार्क्सवाद से प्रेरित थे मगर आपस में एकमत नहीं थे। मार्क्सवादी तो आजादी के बाद से ही पूंजीपतियों अर्थात अमेरिकन एजेंट कांग्रेसियों को समझने लगे थे –जबकि आगे हम देखेंगे नेहरू के प्रधानमंत्रित्व में किस तरह समाजवादी एजेंडों के तहत विकास का सपना और नए भारत का निर्माण किया गया।

तथापि, वाम विचार ने आज तक हमें जो दृष्टि थी उस पर अमल और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन अथवा कांग्रेस को वैचारिक तौर पर जो झकझोरने का कार्य किया –वह उल्लेखनीय है। हम पूर्व में यह कह चुके हैं कि मार्क्सवाद आज भी आंकड़ों में पीछे है –विचार के स्तर पर तो वह विश्व के लोगों में फैला है –उसका कोई पैमाना मार्क्सवाद के कद को माप नहीं पाएगा। ऐसा नहीं है कि भारतीय समाज ही जाति–पाति, छुआछूत, गरीबी, अंधविश्वास, तर्कहीनता, मूढ़ता के कोढ़ में फंसा था, 15वीं सदी तक समस्त यूरोप अंधकार युग में था। धर्म के नाम पर ही सैकड़ों वर्षो तक वे आपस में लड़ते रहे। जिन्हें हम विकसित और शिक्षित समझते हैं वे आज भी (लगभग) गोरे–काले के भेद से उबर नहीं पाए हैं। अभी हाल ही में अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्र में काले लोगों ने एक सुर में विरोध किया था जिसमें न्यायाधिपति सिर्फ गोरे थे। प्रसंग याद नहीं –भाव शेष रहा है। और भाव ही मानव का वास्तविक इतिहास होता है। और भाव कहता है कि भेदभाव आज भी है। गोरा–काला, नाटा–मोटा.... । पश्चिम–पूरब...! गोरी–करियढ़ी. ....!

काला.... छत्तीसगढ़ में इन्हें बिलवा कहा जाता है –कहीं करिया, कल्लू, कलुआ....!

रंग मिटा नहीं सकते, शायद जाति भी नहीं, पर हम स्वीकार तो कर सकते हैं....., चाहे गांधी नजरिए से, चाहे मार्क्स पढ़ कर, असल है विभेद खत्म करना मन और विचार से.....!

मार्क्सवादियो ने यहीं चूक की, लक्ष्य (स्वतंत्रता –साम्यवाद) प्राप्ति की कोशिश की जगह गांधियन मेथड पर सवालिया निशान लगाए गए। जबकि दोनों का लक्ष्य एक था –सिर्फ तरीके भिन्न थे!

बड़ी छोटी सी बात थी –बस उनका एक रंग ही फीका था मगर गोरी से कलुआ का गठबंधन ना हो सका! हाय....!!

16–गांधीजी, गांधीवाद और गांधीवादी –हिंसा बनाम अहिंसा

सत्य परेशान हो सकता है, पर सत्य पराजित नहीं! साध्य पवित्र हो और साधन भी। साध्य (आजादी या और कुछ) पवित्र तो हो मगर साधन (उसे प्राप्त करने का तरीका) पवित्र नहीं तो मानव का भला संदेहास्पद है। ऐसा गांधी जी का विचार था। गांधी जी वैष्णव धर्मी थे –मांस, मछली, मदिरा से दूर! अपने कर्मों के जरिए, अपने जीवन को लक्ष्य कर सत्य की तलाश करते रहे। उनके लिए घृणा पाप से करो, पापी से नहीं। अनैतिक–साम्राज्यवादी ताकतों से भिड़ना–लड़ना उनकी आत्मिक–नैतिक पुकार थी। सत्याग्रह! सत्य पर डटे रहना। सत्य के लिए जीना। अहिंसा उनका परम धर्म था। हां, ब्रिटिश शासन इतना निर्मम था कि उसके लिए ऐसे वाक्य या विचार या सोच फिजूल थे। ऐसा बहुत से आलोचकों का मानना हो सकता है। निर्ममता का जवाब निर्ममता से देना, आतंक का जवाब आतंक से देना, कई लोगों के लिए व्यवहारिक उत्तर हो सकता है। समय–सापेक्ष में सही हो सकता है। पर, गांधीजी ऐसी प्रतिक्रिया को भी गलत ठहराते हैं। उनकी सोच यही है कि अपवित्र साधनों अथवा ऐसे साधन जो सत्य से मेल नहीं खाते, व्यक्ति या व्यष्टि दोनों के उद्धार में अनुचित हैं। दूरगामी प्रभाव बुरा ही होता है।

ऐसी आदर्श राजनीतिक लड़ाई में खासकर निर्मम हुकूमत से पंगा लेते हुए एक नेता का इस सत्य पर डटे रहना निश्चित रूप से उनके अनुयायियों के साथ–साथ उनके विरोधियों को भी हैरान कर रखा होगा। पर, तलवार या लाठी नहीं उठाने का अर्थ यह नहीं है कि विरोध दर्ज न करना। गलत को गलत होने देना, सही आवाज नहीं उठाना और ये कहे कि सत्य से आंखें मूंद लेना। ऐसा कतई नहीं था। निहत्था होकर भी –भूखे–गरीब किसानों–कामगारों को इकट्ठा कर उन्होंने अहिंसा की ताकत, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा की महत्ता को सिद्ध कर दिया था।

आखिर यह किसकी ताकत थी, अहिंसा ? सत्य का पुजारी ? अवज्ञा ?

प्रबुद्धता ? लोकप्रिय नेता के आह्वान की ?

नहीं! यह सभी तत्व तो उनके चट्टे–बट्टे थे। असली बात थी, असली ताकत थी सत्य की पुकार और गलत के विरुद्ध, अन्याय को ललकारने की शक्ति!

जरूरी नहीं कि जब आपके पास तोप और गोला होगा तभी आप मोर्चा खोलेंगे। गांधी जी ने अपने मेथड और क्रिया से यह सिद्ध किया कि सत्य कभी पराजित है ही नहीं। सत्य

लुप्त प्रतीत होता है –अगर कोहरा छाया हो तो, मगर सत्य कभी बेबस नहीं कि वह कल या परसों अपने कदमों पर खड़ा होने के काबिल होगा तभी आप उसकी सेवा लेंगे। सत्य सदैव आपके पास मौजूद है, सत्य सदा ही, अपने पांव खड़ा है।

और अहिंसा से हमारा अर्थ क्या है ? क्या गोली–बंदूक की आवाज ही केवल हिंसात्मक है ?

गांधी जी ने अहिंसक साम्राज्य, अर्थात लाठी–गोली, कानून के डंडे का विरोध और सामना बेशक उन्हीं के अंदाज में नहीं किया, मगर अपनी भाषा में जरूर किया। व्यवहारिक तौर पर हिंसा का जवाब हिंसा से नहीं दिया मगर क्या गांधीजी या आवाम पर हुई हिंसा, अत्याचार सहना भी एक तरह की हिंसा नहीं थी ?

हो सकती है, इसलिए अत्याचार करने वालों से ज्यादा दोषी अत्याचार सहने वाले को माना गया है।

पर, जब हमारी हुकूमत ही वैसी हो जाए, हमारे माई–बाप ही दमन का सहारा लें तब ?

गांधियन मेथड में न ही अत्याचार सहा गया है न ही अपने निर्मम कानून (कायदे से उसका उल्लंघन भी हिंसा सामान माना जाना चाहिए) को स्वीकार किया गया है। गांधी जी ने कई–कई हुकूमत आदेश की अवमानना करके जैसे बहिष्कार, स्वदेशी अपनाओ, नमक बनाकर डांडी मार्च जैसे कायदे तोड़कर यह सिद्ध कर चुके हैं कि यह भी एक तरह की हिंसा का जवाब ही था। शायद हिंसा ही। पर, स्वरूप अलग। मेथड पृथक। खम्बा और जमीन के भीतर गहरे उतरा हो क्या अनुनय–विनय से हिल जाएगा। या उखड़ जाएगा ?

नहीं। जोर तो लगाना ही होगा।

राम के प्रार्थना करने पर भी समुद्र ने रास्ता नहीं दिया था। फिर तीर–धनुष का अनुसंधान किया गया और उत्तर मिला।

सूक्ष्मता से देखें तो अपने दार्शनिक अर्थ में गांधी जी ने खूब बल का प्रयोग किया। खूब शक्ति प्रदर्शन किया। ब्रिटिश हुकूमत को ना केवल हिलाया बल्कि उखाड़ फेंका। अस्त्र नहीं उठाया मगर निहत्था दिखने वाला प्राणी वह शस्त्रविहिन भी नहीं था। उसके लाखों हाथ और सर थे। जरा गौर करें, भारत छोड़ो आंदोलन के समय का एक भाषण जब उन्होंने कहा था कि हमारे तीस कोटी (तब की जनसंख्या) आबादी सिर्फ थूक देगी तो ब्रिटिश राज डूब जाएगा।

ऐसा आक्रोश किस निहत्थे, अहिंसक प्राणी का हो सकता है ?

हम यहां हिंसा या बल को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास इसलिए कर रहे हैं ताकि प्रचलित शब्दावली जो चली आ रही है –उसको नये नजरिए से देखा जाए और यह लोग समझे कि गांधीजी का 'एक गाल पर और थप्पड़' मजाक का विषय नहीं था। गांधियन मेथड में अपूर्व बल निहित है जिसे हम स्पर्श करना चाहते हैं। और वह बल या शक्ति का स्वरुप हिंसात्मक नहीं था, बल्कि उससे अधिक कारगर, प्रभावशाली और प्रबल भी था। ऐसा सिद्ध हो चुका है।

धरती का सीना फोड़कर पौधा पनपता है –वहां भी एक तरह की हिंसा (बल) है, उगे हुए पौधे को उखाड़ फेंकने के लिए भी बल (हिंसा) की जरूरत होती है।

आप हथियार का सहारा लेंगे तभी उसे हिंसा माना जाए ?

वैसे जैन संप्रदाय में तो हिंसा की परिभाषा बड़ी व्यापक है।

फिलहाल इस दार्शनिक पुनर्परिभाषा को यही छोड़ यह कहना उचित होगा कि जो लोग गांधियन तरीके को कमजोर या कायरों का तरीका मानते हैं –वे पूरी तरह गलत है।

गांधी जी का तरीका पूरी ताकत को समर्पित था, सत्य और विश्वास को समर्पित था। हां, इसके लिए गांधीजी को या गांधियन मेथड को स्वयं पर हिंसा जैसे डंडे खाना, उपवास करना इत्यादि करने पड़े थे। यह मेथड कहां से कमजोर हो सकता है। लाखों आवाम भूखे पेट सड़कों पर निकले, अपने को कष्ट दिया, क्या यह हिंसा नहीं था ? हां, यह स्वयं पर अत्याचार था, स्वयं पर हिंसा, स्वयं के गाल पर थप्पड़ मारने जैसा था और इसी बात में गांधियन मेथड क्रांतिकारी था। सारी दुनिया को इसने इसलिए झकझोर कर रख दिया। इसे इसलिए मान्य किया गया कि यह साध्य महान था।

यह अकारण नहीं है कि आज नोबेल कमेटी किसी न किसी तरह से गांधी जी को शांति पुरस्कार के लिए नवाजना चाहती है। गांधी जी को पुरस्कृत न करने के लिए उसे आज भी पछतावा है।

प्रश्न यह भी उठाया जाता है और जायज सा लगता है कि गांधीजी द्वारा क्रांतिकारियों की गतिविधियों की निंदा की जाती रही है। यहां तक कि भगतसिंह सरीखे क्रांतिकारियों के कार्य को उन्होंने आतंकी रवैया, यहां तक कि आतंकवादी ही समझा। उन्हें डर था कि युवा पीढ़ी आक्रोश और उत्साह में कहीं गलत दिशा में न चली जाए। इसलिए ऐसी हरकतों की गांधीजी ने सदैव निंदा की। बात सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं थी, गांधी ने ब्रिटिश हुकूमत की शक्ति को समझ चुके थे। उनकी तानाशाही, उनकी ताकत का बखूबी अंदाजा उन्हें था। वे युवाशक्ति हों या निरीह किसान और कामगार उन पर हुकूमत के ताले और काल–कोठरी से जहां तक हो सके –गांधी बचाना चाहते थे। युवा क्रांतिकारी बलिदान को आगे आना चाहते थे, कुर्बानी के लिए तैयार थे –मगर ऐसी कुर्बानी गांधीजी जिसमें मानव संसाधन नष्ट हो रहा हो –उसकी प्रशंसा कैसे करते। जब 1920 का असहयोग आंदोलन चरम

पर था और चौरा–चौरी कांड हुआ, गांधी जी द्वारा आंदोलन वापस ले लिया गया। घोर निंदा की गई, यहां तक कि उन्हें राष्ट्र के साथ दगा देना तक बताया गया।

पर, जिस बात को समाजवादी क्रांतिकारी या अन्य नहीं देख पाए उन्हें गांधी जी ने भांप लिया था। उन्होंने देख लिया था कि हुकूमत निर्मम कार्रवाई करने जा रही है –पता नहीं कितनों पर सरेआम कोड़े बरसाए जाते, कितनों को फांसी और लंबे कारावास के लिए भेजा जाता। और तो और इस दमन नीति से संगठन के नेता भी बिखर सकते थे जैसा कि हमें छोटे पैमाने पर क्रांतिकारी दल के नेताओं के दमन के पश्चात देखने को मिलता है। चिट्गांव गुट हो या चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह की शहादत के बाद हिंदुस्तान रिवॉल्यूशनरी एसोसिएशन की बात –सभी ग्रुप अपने नेता खो देने (फांसी या कारावास) के बाद निष्क्रिय हो गए या लंबे समय के बाद सक्रिय हो पाए।

बात अगर निहित दार्शनिक तत्व को निकालकर भी व्यवहारिक आयाम से गांधी जी के निर्णय को परखें तो आज उनके कदमों की समीक्षा करते हुए उनके द्वारा उठाए चरण, स्ट्रेटजी तब के संदर्भ में एकदम सार्थक थे।

यह अलग बात है कि क्रांतिकारियों के जज्बे पूरे देश भर में सराहे गए। उनकी स्ट्रेटजी ने युवा और आवाम में अपने उद्देश्य, मंसूबे बखूबी और तेजी से फैलाए। पर, यह क्षणिक नतीजे थे, तात्कालिक जबकि हुकूमत के साथ लड़ाई लंबी थी। इसका भान भी गांधीजी को था। आखिर अपने अंतिम समय में स्वयं भगत सिंह ने पत्र लिखकर यह अभिमत प्रगट किया कि क्रांतिकारी युवा व्यक्तिगत हीरोइज्म से ऊपर उठकर जनता (मास) को जागृत करें, संगठित करें।

ठीक यही गांधी जी कांग्रेस के जरिए कर रहे थे और ठीक यही विचार क्रांतिकारियों ने भी कांग्रेस का लगातार समर्थन देकर कर रहे थे।

सवाल इनके सही होने और दूसरे के गलत होने का नहीं था। सवाल ज्यादा सही, ज्यादा उपयोगी और तात्कालिक हलचलों से हटकर लंबे समय में सार्थकता का था, जिसे निश्चय ही तब गांधियन स्ट्रेटजी में हम देखते हैं। जिसे तब बहुतों द्वारा नहीं समझा गया।

यही नहीं, गांधीजी कांग्रेस की कमान अपने हाथ में लेने के पूर्व भारत आगमन उपरांत गोखले के मार्गदर्शन पर देश–देश घूम कर स्थितियों का जायजा ले चुके थे। अहमदाबाद के मजदूरों की समस्या, बिहार में चंपारण में किसानों की समस्या (नील खेती) और खेड़ा में किसानों–रैयतों की समस्या वे हल कर चुके थे। वस्तुस्थिति से वाकिफ हो चुके थे। इन सभाओं में उन्होंने करीब से भारतीय आवाम की शक्ति, उनकी सूनी आंखों को देखा और अपने अभिमत पर कायम रहे कि इन पर अत्याचार नहीं ! हुकूमत की हिंसा तो बिल्कुल नहीं।

वह देख चुके थे कि भूख हड़ताल या पार्टी या रैलियों में दुखी लोगों की संख्या किस कदर कम होती जाती है। यहां तक कि कैडर के नेता भी ढीले पड़ जाते हैं। आवाम की नज्म कहे या आवाम की कैफियत –सब कुछ समझते थे। उनकी नीतियां सबसे बढ़कर दिल्ली या लंदन के शयनकक्ष में नहीं बनी थी –उस जमीन पर बनी थी जहां दुख और कातरता सीधे–सीधे अभिव्यक्त हो रही थी।

हम थोड़ा पीछे हटकर गांधी जी के जीवन और कार्य–व्यापार को समझने की कोशिश करेंगे और इस तथ्य को ढूंढने की कोशिश करेंगे कि आखिर उन्हें किन बातों या घटनाओं ने गांधी को जो कि उन्हें एक संज्ञा से विशेषण से भर दिया।

गांधीजी एक शिक्षित और तब के समय के प्रतिष्ठित घराने से तालुकात रखते थे। वे काठियावाड़ के दीवान (मिनिस्टर) के बेटे थे और जीविकोपार्जन करना उनके लिए अनिवार्यता या बाध्यता नहीं थी। वह वैष्णव थे, मांस मदिरा से दूर सर्वधर्म समभाव जिनका आदर्श था। लंदन से 3 साल बिता कर बैरिस्ट्री पास कर चुके थे और वकालत उनका पेशा था। लियो टॉलस्टॉय, रूसी लेखक और कबीर उनके प्रिय साहित्यकार थे। टॉलस्टॉय का आदर्श उन्हें संभवतः अधिक प्रिय था। 1893 में गुजरात के एक व्यापारी, दादा अब्दुल्लाह के निवेदन पर उनका 1 वर्ष के लिए दक्षिण अफ्रीका डरबन गमन हुआ। उस वक्त उनकी उम्र 24–25 के आसपास रही होगी, तथापि दक्षिण अफ्रीका में सबसे शिक्षित, बैरिस्टर गांधी जी ही थे। दक्षिण अफ्रीका में तब दक्षिण भारत (तमिल) और कुछ व्यापारी गुजरात इत्यादि से वहां विशेषकर शुगर प्लांट और खदानों में कामगार की हैसियत से प्रवास कर चुके थे। प्रवासी भारतीयों की अच्छी आबादी थी, दक्षिण अफ्रीका पर भी भारत की तरह ब्रिटिश हुकूमत का राज था।

गोरे और काले रंगभेद की नीति या अनीति उनके (गांधीजी) डरबन से प्रीटोरिया गमन के दौरान कई–कई दफा झेलना पड़ा। प्रचलित कंपार्टमेंट (रेलवे फर्स्ट क्लास टिकट होने के बावजूद भी) उन्हें धक्के मारकर निकाल दिया गया था। किसी भी होटल में उन्हें ठहरने नहीं दिया गया था। रंगभेद का रंग चमकीला था। इन घटनाओं में जैसा कि हम जानते हैं रेलवे कंपार्टमेंट से धक्के खाने के बाद भी गाधीजी ठंड में ठिठुरते रात बिताया। कदम–कदम भेदभाव बर्ताव से आहत हुए। घटनाओं ने उन्हें मानसिक, आत्मिक और शारीरिक रूप से झकझोर कर रख दिया। तत्काल ही उन्होंने प्रिटोरिया में भारतीय प्रवासियों को इकट्ठा किया और भेदभावपूर्ण व्यवहार की निंदा की। इसका प्रतिकार कर अपनी आवाज के अस्तित्व

का आह्वान किया। अपना विरोध प्रेस में लेख लिखकर क्रिश्चियन सभ्यता–संस्कृति पर ही सवाल उठाया। उन्होंने भारतीयों के अपने अस्तित्व और मानव गरिमा के मान की रक्षा हेतु स्वयं जागृत हो विरोध करने को प्रेरित किया। प्रेरित ही नहीं किया बल्कि संगठन तैयार किया, चंदे इकट्ठे किए, ब्रिटिश हुकूमत तक को पत्र लिखकर अपना विरोध दर्ज किया। सबसे बड़ा सवाल था –मनुष्य को मनुष्य न समझना। वहां पूर्ण सम्मान के हकदार सिर्फ गोरे थे, अन्य नहीं। अन्य शायद दोयम–तीयम या किसी लायक ही नहीं थे। या फिर खदान के मजदूर, पत्थर तोड़ने वाले या प्लांटों में बोझ उठाने वाले।

भेदभाव! अन्याय!

मार्क्स भी पूंजीवादी साम्राज्य में भेद–भाव को देख चुके थे जहां कामगारों को मनुष्य नहीं, मशीन से भी बदतर दर्जा प्राप्त था।

गांधीजी जिस उद्देश्य से दक्षिण अफ्रीका आए थे वह काम समय पर हो चुका था –मगर इत्तेफाक देखिए कि उन्हें बीस वर्ष और वहां रुकना पड़ा। बीस वर्षों के दौरान गांधीजी ने प्रजातीय भेदभाव और उससे उत्पन्न कई विधेयकों/कानून का विरोध किया और अंततः विजयी हुए।

दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी से पूर्व एक भी शख्स ऐसा नहीं था जो हुकूमत को हुकूमत की जुबान में, उसी के कानून को लिख–पढ़ या समझ सकता हो। गांधीजी वो शख्सियत थे जो ना केवल भाषा, बल्कि अंग्रेजों के कानून और उनकी तथाकथित 'पश्चिमी सभ्यता' को खूब अच्छी तरह समझते थे। वे भेदभावपूर्ण व्यवहार के खिलाफ कानून के अधीन ही पीटीशन तैयार कर हुकूमत से सीधा सवाल–जवाब कर सकते थे। सबसे बढ़कर उनमें अत्याचार या असत्य का प्रतिकार करने की क्षमता थी। एक लीडर की हैसियत से प्रोपगंड़ा, संगठन, सूचना–प्रसार, अपने फैसले पर अडिग रहना इत्यादि गुणों से भरपूर थे। वहां 'नॅटल ऑपिनियन' जर्नल का प्रारंभ कर नॅटल इंडियन कांग्रेस की स्थापना की। टॉलस्टाय फार्म निर्मित किया गया। सत्याग्रह आंदोलन तेज हो चला और सत्याग्रहियों के रूकने ठहरने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इसी तर्ज पर भारत में उन्होंने साबरमती आश्रम की स्थापना की। टॉलस्टाय फार्म और सत्याग्रह के लिए फंड की व्यवस्था की गई। उल्लेखनीय है कि तब रतन टाटा ने फार्म के लिए हिंदुस्तान से 25000 रूपये भेजे। हैदराबाद के निजाम ने भी खुलकर चंदा भेजा। कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने भी मदद की।

इस बीच कुछ विशेष मुद्दे उभरे और जिन पर गांधियन तरीके से वहां की सरकार को सत्याग्रहियों के विरोध को देखते हुए झुकना पड़ा। आज के पाठकों के समक्ष उन्हे पुनः प्रस्तुत करना दिलचस्प होगा ताकि हम देखें कि हमारे पूर्वज और गणमान्य किस राजनीति व समाज के हिस्से थे और आज की तुलना में हम अपनी आजादी को आंक सकें।

कानून बनाया गया कि जो भी अप्रवासी भारतीय दक्षिण अफ्रीका आते हैं उनके दोनों अंगूठों के निशान रजिस्टर कराएं जाएं और रजिस्ट्रेशन कार्ड सदैव अपने पास रखना अनिवार्य होगा।

या सीधे–सीधे भारतीयों की नागरिकता पर सवाल था। यह अपमानजनक था।

उसी तरह एक और मजेदार कानून पास हुआ कि चाहे कोई भी जाति–धर्म हो –भारतीय जोड़ों को क्रिश्चियन रीति से शादी कर ही रजिस्टर्ड करवाने पर उन्हें वैध माना जाएगा। उनके संतान अवैध घोषित हो गए।

इस कानून पर क्या टिप्पणी की जाए ?

उसी तरह भारतीयों के आव्रजन (इमीग्रेशन) पर पूर्ण रोक लगाने संबंधी विधेयक लाया गया, टोल टैक्स बढ़ाये गये।

उक्त सभी का विरोध गांधियन मेथड से संगठित हो, किया गया। जेल भरे गए, सरकारी दमन का सामना किया गया। कामगारों–मजदूरों जहां निवास करते थे उनका बिजली–पानी बंद कर दिया गया। लोग सड़क पर आ गए। गांधी जी के नेतृत्व में हजारों को जेल भेजा गया। पुलिस–प्रशासन गांधी जी से इस तरह पेश आए मानों कुख्यात क्रिमिनल हों –उन्हें हथकड़ी पहनाकर अदालत में पेश किया जाता था।

यह सब अपमान और दमन के तरीके थे। लंबी लड़ाई चली। गांधी जी को भारतीय नेशनल कांग्रेस का भी समर्थन मिलता रहा। गोपाल कृष्ण गोखले आंदोलनकारियों से मिलने दक्षिण अफ्रीका पहुंचे।

दक्षिण अफ्रीका की इस लड़ाई में हिंदू–मुस्लिम, ईसाई, पारसी सभी एकत्रित थे। अंततः सरकार को झुकना पड़ा और गांधी द्वारा सत्याग्रह आंदोलन उत्तरोत्तर तीव्र करना, आवश्यक होने पर महिलाओं द्वारा भी सड़क पर उतरना, इत्यादि ऐसे प्रसंग थे जिनसे गांधी जी को अपने तरीके पर विश्वास और पूर्ण विश्वास होने लगा था। उन्होंने यह भी सीखा कि कई बार लोकप्रिय निर्णय न होने की दशा में कुछ लोग नाराज भी हो सकते हैं मगर एक लीडर को अपने सिद्धांतों पर अड़ा रहना चाहिए। उनके निर्णय से क्षुब्ध दक्षिण अफ्रीका में उन पर दो बार जानलेवा आक्रमण हुआ था। वह बच गए –मगर सबक भी प्राप्त किया। वहीं सबक उन्होंने हमेशा भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दरम्यान चाहे चौरा–चौरी कांड के समय लिया गया निर्णय हो या चाहे अन्य अनेक –वे

सिद्धांतों पर अड़े रहे। वह समझ चुके थे कि उनके विरोधी तो विरोध करेंगे ही, उनके अनुयायी भी तीव्र विरोध कर सकते हैं। और इतिहास ने यह साबित भी किया है।

जनवरी 1915 में गांधी जी भारत वापस आए। उनके आगमन के पूर्व ही गांधियन मेथड और गांधी जी को पर्याप्त यश प्राप्त हो चुका था। वो प्रमाणित लीडर हो चुके थे।

उस वक्त नेशनल कांग्रेस के नेतृत्व में मॉडरेटेड अर्थात सुधारवादी तरीके से हुकूमत से मांगें और दलीलें पेश की जाती थीं। गांधीजी इन तरीकों को दक्षिण अफ्रीका में आजमा चुके थे और इन तरीकों पर उनका कोई भरोसा नहीं था। तिलक और एनी बेसेंट के नेतृत्व में होमरूल आंदोलन जारी था। भारत आगमन उपरांत तत्काल गांधी जी को राजनीतिक अखाड़े में कूदने की जल्दी नहीं थी। इसके तीन कारण थे–

एक –उन्हें देश की राजनीति और स्थितियों को समझना था और इसके लिए वे स्वयं दूरस्थ क्षेत्र घूमकर गरीबों–किसानों से रू–ब–रू होना चाहते थे। दो –अपने विरोधी ब्रिटिश हुकूमत जो कि प्रथम विश्वयुद्ध में उलझा था –युद्ध में फंसे लोगों चाहे वे विरोधी ही क्यों ना हो तंग करना उनकी नैतिकता–शिष्टता के दायरे में नहीं आती थी। तीन –स्थितियों से अवगत होकर गांधी जी अपने मेथड से कांग्रेस के मार्फत देश की आवाज होना चाहते थे, न कि किसी अन्य विचार–मान्यता से प्रभावित। इसका ये अर्थ नहीं था कि अच्छे विचारों के लिए उनके हृदय–मस्तिष्क में जगह नहीं थी। उन्होंने स्वयं कहा कि नए विचारों का स्वागत है बशर्ते कि वह उनकी आत्मा के अनुकूल हों। फिलहाल, सुधारवादी रवैया उनकी नजर में व्यर्थ था।

देशव्यापी असहयोग आंदोलन (1919–1920) छेड़ने से पूर्व गांधीजी स्थानीय मुद्दों व वस्तुस्थिति से अवगत होने की दृष्टि से 1917–18 में खूब भ्रमण किया जिनमें चंपारण का नील (तिनकाठिया सिस्टम) की खेती का मुद्दा दिलचस्प है।

बिहार में नील की खेती को लेकर पूर्व में भी हुकूमत से विवाद हो गया था। और नील के खेतिहारों द्वारा बगावत करने के कारण और हुकूमत के दमन उपरांत भी जब समस्या नहीं सुलझी तब बहुत से अंग्रेज स्वयं नील की खेती करने लगे। चूंकि यूरोप के उद्योगों को (कपड़ा मिल) नील की भारी मांग थी और बिहार–बंगाल का नील उच्चतम गुणवत्ता का था। पर, किसानों को नील की खेती से कोई लाभ नहीं था, उलटे अनाज नहीं उगाने के कारण भुखमरी की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। हुकूमत ने एक प्लाट में तीन कठिया प्रणाली, अर्थात् जमीन के दो–तिहाई हिस्से पर नील की खेती अनिवार्य कर दी थी।

राज कुमार शुक्ला जो कि स्थानीय किसान नेता था –ने गांधी जी को इस बात से अवगत कराया और चंपारण आगमन का निमंत्रण दिया।

गांधीजी चंपारण पहुंचे। कमिश्नर ने तत्काल उन्हें जिला छोड़ देने का हुक्म दिया। होमरूल मूवमेंट से जुड़े तिलक और एनी बेसेंट ऐसे आदेश की अवहेलना नहीं कर पाए थे –तथापि उन्हें पब्लिक विरोध का एजेंडा (होमरूल) उनके साथ था। लोग उनके साथ थे। यहीं गांधीजी तब अकेले थे बिना किसी संस्थागत बैनर के नीचे। गांधी जी ऐसी हुकूमत से निपटना दक्षिण अफ्रीका में सीख चुके थे, वे कहां मजिस्ट्रेट के आदेश को मानने वाले थे। डटे रहे और हुकूमत की जेल देखने को तैयार थे। सरकार को झुकना पड़ा और इजाजत मिली। वे अपना निरीक्षण कर सकते हैं।

गांधीजी ने नील खेतिहारों का बारीकी से निरीक्षण किया। उनका अन्वेषण भी अलग था। उनके सहकर्मी बृजकिशोर, बाबू राजेंद्र प्रसाद (प्रथम राष्ट्रपति) और 4–5 अन्य जिसमें जे बी कृपलानी भी थे –गांधी जी के साथ सुबह से शाम गांव–गांव के किसानों से मिलकर उनका स्टेटमेंट दर्ज करते और स्वयं वस्तुस्थिति का जायजा लेते।

हुकूमत पर भी इसका असर हुआ और उसने एक सरकारी जांच दल बनाया जिसमें गांधी जी को सदस्य रखा गया। पर्याप्त सबूतों के साथ लगभग 8000 (आठ हजार) किसानों से रू–ब–रू होकर इस नतीजे पर पहुंचे कि तीन कठिया प्रणाली भंग की जाए तथा अवैधानिक तरीके से बागान मालिकों द्वारा किसानों से वसूली गयी पूरे रकम की 25 प्रतिशत राशि वापस करेंगे।

आलोचकों ने आपत्ति उठाई कि अवैध वसूली के मात्र 25 प्रतिशत क्यों शत–प्रतिशत क्यों नहीं ? इस पर गांधी जी ने जो अनुमान लगाया उसके अनुसार 25 प्रतिशत की राशि ही पर्याप्त थी। बागान मालिकों का अस्तित्व व सम्मान दोनों आहत हुआ था।

गांधी जी का अनुमान एकदम सही था। अगले कुछ ही वर्षों में बागान मालिकों ने चंपारण छोड़ दिया।

गांधीजी सत्य के पुजारी थे –न्याय उनका धर्म था।

मालिक होना या पूंजीपति होना उनके विरोध का कारण नहीं था।

इस प्रसंग को इसलिए यहां नहीं उठाया गया है कि पाठकों को गांधीजी या स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास से परिचित कराया जाए। इस पर दर्जनों अच्छी किताबें मौजूद हैं। यहां इस या ऐसे प्रसंग इसलिए लिखे जा रहे हैं ताकि इन घटनाओं के दृश्य में गांधीवाद और मार्क्सवाद के मूल स्वरूप को समझा जा सके। सिद्धांतकारों पर बड़ी–बड़ी, मोटी–मोटी पोथियां, रिसर्च पेपर प्रकाशित होते रहे हैं –मगर कई दफा

बड़ी छोटी सी बात चूक जाती है। उद्देश्य, तुलना करना श्रेष्ठता सिद्ध करना नहीं, देशी और विदेशी खांचा खींचना भी नहीं। लेखन का उद्देश्य है समझना। शायद नए परिपेक्ष्य से। गांधीवाद–मार्क्सवाद दोनों को। खैर!

उक्त प्रसंग जितना किसानों के हित में था, उतना ही हुकूमत के हित में और बाग–मालिकों के भी। चूंकि बाग–मालिकों (ज्यादातर अंगरेज) ने कर्ज लेकर इस फायदे के कारोबार में हाथ डाला था, मगर किसानों के विरोध के कारण और प्रणाली भंग किए जाने के कारण बाग–मालिक अब वहां चावल की खेती तो नहीं करते ? पूंजी अपना कार्य इसी तरह करती है –शासन पर जबर डालती है और अपने हित में कानून पास करवाती है।

यह आज भी जारी है। स्वरूप विकसित व विकराल हो गया है। न अब कोई गांधी है न ही वो पीड़ित आवाम जो सड़क पर आने को तैयार है। उसे सब स्वीकार है। स्वीकार की दशा में क्या आंदोलन! वे संतुष्ट हैं। वे सरकार बदलते हैं और उम्मीद पर कायम हैं। पर, हुकूमत चाहे ब्रिटिश की हो या विश्व की कहीं की भी हो –मूल भाव अब भी बना है। असंतोष तो रहता है। क्योंकि 'न्याय' या 'सच' एक आदर्श है जो शायद उस तक हम पहुंचने की कोशिश करते तो हैं –पर न जाने क्यों –एक दूरी बनी रहती है।

फिलहाल, जरा इस घटना को मार्क्सवादी नजरिए से देखें। क्या गांधीजी कामगारों के अथवा ट्रेड यूनियनों के नेता नहीं सिद्ध हुए ? उन्होंने क्या खूब मैनेजमेंट का कार्य किया। पूंजीवाद, –स्टेट और कामगार।

एक और सवाल जो इतिहास से (मार्क्सवादी इतिहास से) पूछा जाना चाहिए कि क्या फैक्ट्रियों के मालिक और यूनियन के बीच मार्क्सवादी सिद्धांत के तहत यूनियन नेता क्या गांधीजी की तरह मानवीय और न्यायसंगत थे ?

गांधी जी के गांधीवाद में कोई वर्ग संघर्ष नहीं है। वे सभी मनुष्य हैं और उनको सत्य का मार्ग दिखाना एक घटना नहीं प्रक्रिया है जो कुछ समय मांगता है।

एक और प्रसंग है जो मार्क्सवाद और गांधीवाद को समझने में सहायक है। दिलचस्प भी है।

चंपारण के बाद गांधी जी को अहमदाबाद के मिल मालिक और कामगारों का विवाद निपटाना पड़ा। वहां मालिक और मजदूरों के बीच प्लेग के कारण 'महामारी बोनस' को लेकर विवाद चल रहा था। मजदूर असंतुष्ट थे –मालिक ने ट्रिब्यूनल को बोनस के तहत मात्र 20 प्रतिशत की राशि भुगतान देने पर अड़ा था, वहीं कामगार असंतुष्ट थे। प्रथम विश्व युद्ध का दौर था, महंगाई बढ़ चली थी। मजदूर असहाय थे। अहमदाबाद के ब्रिटिश कलेक्टर ने गांधी जी को तलब किया। मिल मालिक पर दबाव बनाकर समझौते का रास्ता ढूंढने का दायित्व गांधी जी को दिया गया। मिल का मालिक गांधी जी का मित्र था –अंबालाल साराभाई –शहर का माना हुआ मिल मालिक। जब साबरमती आश्रम संकट में था तब मित्रता निभाते हुए साराभाई ने बड़ी उदारता से आर्थिक सहयोग किया था। यहां तक कि साबरमती आश्रम का अस्तित्व ही उनके सहयोग से बचा था।

साराभाई इस बात पर अड़े थे की हड़ताल पर जाने वाले कामगारों की छुट्टी कर दी जाएगी और बोनस वहीं 20 प्रतिशत! इससे अधिक नहीं। उनका कहना था चूंकि महामारी समाप्त हो चुकी थी अतः बोनस कैसा ?

गांधी जी ने मिल के उत्पाद और लागत, खर्च और आय का गहन अध्ययन किया, साथ ही कामगारों के जीवन यापन के लिए न्यूनतम राशि का भी अध्ययन कर 35 प्रतिशत की वृद्धि पर अपनी सहमति दी। अस्वीकार की स्थिति में कामगारों को हड़ताल पर जाने की स्वीकृति दी।

साबरमती आश्रम में हड़ताली इकट्ठा होने लगे। गांधी जी भाषण देते। अहिंसा की अभिव्यक्ति देते। सत्याग्रह पर टिके रहने की बात करते।

इस घटना में यह भी दिलचस्प था कि साराभाई की बहन अनुसूइया बहन इस संघर्ष में मजदूरों–गांधी जी के साथ थी। दिलचस्प यह कि स्वयं गांधी किससे भिड़ रहे थे ? अपने मित्र और कहां ? साबरमती आश्रम जिसे उस व्यक्ति ने कभी जीवनदान दिया था।

यह प्रसंग उल्लेखनीय और मानवीय मूल्य से भरपूर है। ऊपर जो घटना का विवरण है वह इतिहास है, मगर साहित्य इतिहास के परे की चीज है।

यहां मार्क्सवाद की प्रमाणिकता देखें। मार्क्सवाद जिस भौतिक द्वंदवाद की बात करता है, जिस बुर्जुआ और प्रोलेटेरियन की बात करता है, यानी एक वैज्ञानिक व्याख्या करता है –वह विज्ञान चाहे आप समाज विज्ञान कह लें, यहां प्रदर्शित हो रहा है। विचार किसी रिश्ते के दायरे से बड़ा है, देश–काल, रक्त–संबंध सबसे! मार्क्स इसे इसी रूप में अभिव्यक्त करते हैं। फिल्म सगीना में जिसे तपन सिन्हा ने निर्मित किया है और वहां के किसी लेखक का (नाम याद नहीं) उपन्यास पर आधारित फिल्म रचा गया है, फिल्म (उपन्यास) के मिल मालिक की बेटी कामगारों के साथ है। वह अपने पिता के खिलाफ संघर्ष करती है क्योंकि उसे लगता है कामगारों को हक मिलना चाहिए। ऐसे अन्य अनेक प्रसंग आपको मिल जाएंगे।

यह प्रसंग आया है तो गांधी जी के नजरिए को समझा जाए। क्या वे किसी 'विचार' के तहत अर्थात मार्क्स से प्रेरित

होकर ऐसा कर रहे थे ? अनुसूइया बहन का पता नहीं मगर गांधी जी का ऐसा करना उनके न्याय या कहें सत्यधर्मी होना ही प्रमाणित करता है।

गांधीजी समाज विज्ञान पढ़कर समदर्शिता नहीं दर्शा रहे थे –गांधी जी सत्य और न्याय के प्रतिरूप थे। वे स्वयं सत्य थे –और कुछ नहीं।

क्या गांधी जी को अपने मित्र के खिलाफ दबाव बनाने पर उनका अंतस कमजोर नहीं हुआ होगा ?

यहीं वे खास हो गए, एकदम खास, जब उन्होंने व्यष्टि को दरकिनार किया ताकि समष्टि का हित हो सके। व्यक्ति गांधी मृत हो गया और समष्टि गांधी जीवित हो गया। जिसका संबल था –सत्य!

मार्क्स का सिद्धांत सामाजिक तथ्य को सामाजिक सत्य में बदल देता है। वर्ग–संघर्ष साफ–साफ दिखता है। यहां फिर गांधी जी ट्रेड यूनियन के माने हुए नेता की तरह समझौता करवाते हैं। मिल मालिक झुकते हैं, 35 प्रतिशत वृद्धि स्वीकार होती है, हड़ताली वापस काम पर जाते हैं। पर हां, गांधी जी को अब तक अनशन तक करना पड़ता है। जब आंदोलन लंबा चलने लगता है तो हड़तालियों की संख्या धीरे–धीरे कम होने लगती है तब स्वयं गांधी जी द्वारा भूख हड़ताल पर जाने का निर्णय लिया जाता है। हड़ताल में फिर से जान आ जाती है। अंततः उनकी जीत होती है।

जरा गौर फरमाएं –अगर ट्रेड यूनियनों के नेता निष्पक्ष और न्यायधर्मी न हों तो मार्क्स के सिद्धांत का क्या होगा ?

काव्य

वर्षा रानी

फिर आयी ऋतुओं की रानी
वर्षा रानी, वर्षा रानी।
गर्मी ने था खूब सताया
रौद्र रूप अपना दिखलाया
वर्षा ने जब जल बरसाया
दूर हुई उसकी मनमानी
फिर आयी ऋतुओं की रानी
वर्षा रानी वर्षा रानी।
झिर–झिर पानी बरस रहा है
अन्तस्थल तक सरस रहा है
भर गये नदी, ताल धरती के
सब में आई नई रवानी
वर्षा रानी, वर्षा रानी।
जीवों में नव–जीवन आया
ऊर्जा से जीवन भर आया
हरे–भरे सब पेड़ हो गये
दूर हुई सबकी वीरानी
वर्षा रानी, वर्षा रानी।

विजय वर्धन
लहेरीटोला,
भागलपुर, बिहार
मो.–92045642724

17–आज के गांधीवादी बनाम मार्क्सवादी

आज दुनिया में गांधी और गांधियन मेथड की आए दिन चर्चा होती है। और होनी भी चाहिए।

लोग कहते हैं यह सभी बातें बकवास हैं –आज गांधीवाद की कोई जरूरत नहीं।

लोग कहते हैं कि सोवियत रसिया का विघटन हो गया, अब मार्क्सवाद का क्या होगा ?

उक्त दोनों ही बातें मूर्खता का प्रमाण हैं।

एक सिद्धांत है तो दूसरा मूल्य!

मार्क्स एक सामाजिक सिद्धांत है, गांधी जी मानव मूल्य! क्या दोनों के बगैर एक अनुशासित, आत्मनिर्भर और प्रबुद्ध आवाम की उम्मीद कर सकते हैं ? क्या सिर्फ टेक्नो बेस्ड होकर मानव महामानव बन सकता है ? वह रोबोट पैदा कर सकता है –इंसान नहीं। यदि सचमुच इस विश्व को रोबोटों का घर नहीं, इंसानों की बस्ती बसाए रखना है तो मानवीय सिद्धांत और मानव मूल्य का अस्तित्व साथ–साथ हो। हमें दोनों चाहिए। कोई एक नहीं।

हम सिद्धांतों की दुहाई देते हैं। बड़े नेताओं के आदर्श के पिछलग्गू घोषित करते हैं। जैसे कोई स्कूल–कॉलेज का प्रोफेसर मार्क्स की मोटी किताबों का अध्ययन करके –कोई रचनाकार मार्क्स के शब्दों का जाल बुनकर मार्क्सवादी जुलाहा बन जाता है। क्या सचमुच में ऐसा हो सकता है कि कोई डिक्शनरी के दो–चार परिभाषित शब्द सीख कर उसका ज्ञाता हो जाए ?

इस प्रश्न को यहां क्यों उठाया गया है ?

इसलिए उठाया गया है कि हम अपनी दुर्दशा, अन्याय के लिए सीधे–सीधे सिद्धांतकारों को ही दोषी ठहराते हैं। यही कि वह तो गांधीवादी था उसने क्या किया। वह राज्य तो मार्क्सवादियों का है वहां क्या उखाड़ लिया ?

इस प्रश्न में ही उत्तर है। बस, गौर फरमाने की जरूरत है।

'आज के गांधीवादी बनाम मार्क्सवादी' शीर्षक पर अधिक टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। सिर्फ सवाल उठाना ही प्रबुद्ध पाठकों के लिए पर्याप्त होगा।

और लगे हाथों एक सवाल और....., भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू वल्द श्री मोतीलाल नेहरू, की पुत्री प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी....., क्या गांधीवादी थे ? क्या वे मार्क्सवादी समाजवादी थे ? या दोनों ?

यह प्रश्न इसलिए उठाया जा रहा है कि नैतिकता और सिद्धांत की अहमियत आने वाली पीढ़ी और वर्तमान समझ सके। किसी 'वाद' को कंठस्थ करना ही 'वादी' हो जाना नहीं, भीतर पचाना भी अहम है और जागरूक पाठक इस प्रश्न

के बहाने समझ सकते हैं कि उन मूल्यों का और उन सिद्धांतों को उनकी महान विरासत ने क्या किया ?

और उदाहरण देना उचित नहीं। पर, कुछ उदाहरणों की ओर बरबस ध्यान चला जाता है जो कि दिलचस्प भी है और बहुत से सवालों का जवाब ही मिल जाता है।

जे.पी. (जय प्रकाश) आंदोलन के समय एक लाठीचार्ज में जयप्रकाश जी के चेले लालू प्रसाद यादव, जब युवा थे, अपने नेता जे.पी. को बचाने वास्ते स्वयं पुलिस की लाठी खाई थी। उस घटना ने उन्हें काफी लोकप्रिय बनाया था और जे.पी. के बहुत करीब हुए। ये वही लालू प्रसाद यादव जी हैं जो समाजवादी जे.पीं के भक्त ठहरे। जब बिहार के मुख्यमंत्री बनकर और बिहार के किंग मेकर बनकर बिहार में कैसी समाजवादी आदर्श का स्थापना की, कहने की आवश्यकता नहीं। उधर मुलायम सिंह यादव उसी तर्ज के समाजवादी ठहरे, जिनके कार्यकाल में सैकड़ों गन्ना मिले बंद करनी पड़ी और पीड़ितों को ढंग का मुआवजा भी आज तक नहीं मिला।

प्रश्न घूमकर 'वाद' पर नहीं 'वादियों' पर टिक जाता है। और यह 'वादियां' कश्मीर की कली सरीखी दिलचस्प हैं। गांधी, गांधीवाद और गांधीवादी –इनमें गांधी वादियों को ढूंढना, पकड़ना असली चुनौती है। 'वादी' 'वाद' का सहारा लेकर कौन सा 'विवाद' पैदा कर रहा है ? –प्रश्न यह है।

यही प्रश्न मार्क्स नामक 'वादियों' के साथ भी लागू होता है।

और एक प्रसंग जो बहुत ताजा है। इस लेख के लिखे जाने तक छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री रमन सिंह इस्तीफा दे चुके हैं, कांग्रेस को दो तिहाई बहुमत से भी अधिक सीटें प्राप्त हुई हैं। दिल्ली में कांग्रेस अध्यक्ष की अध्यक्षता में छत्तीसगढ़ का नया सी.एमं चुनना है। सिंहदेव, बघेल, महंत, साहू या कोई और.....!

जनमत ?

यह जनमत क्या है ?

सुना है जनमत जानने के लिए 'एप्स' का सहारा लिया जा रहा है। सुना है लोकप्रिय नेता चुनने के लिए किसी रिपोर्ट का भी सहारा लिया गया है। पर कंफ्यूजियन बरकरार है। मतलब संशय।

पद्धति तो लोकतांत्रिक है। जरा भी संदेह नहीं!

पर, क्या यह सही जनमत होगा ?

थोड़ी चर्चा करें–

जनमत है क्या ? क्या सौ में निन्यानबै लोगों का पक्ष जनमत माना जाए!

शायद हां! प्रजातंत्र यही है।

नहीं...., यह निन्यानबै गलत भी हो सकते हैं। क्योंकि भीड़ बुद्धिमान हो इसकी गारंटी नहीं के बराबर है।

तो क्या वह एक मत, सौवां, जो निन्यानबै का विरोधी मत है –वह सही है ? और क्या यह सौ में एक मत निन्यानबै पर भारी ?– यह तो तानाशाही है।

हां। यह तानाशाही हो सकता है अगर इरादा 'इंटेंशन' / भावना पवित्र हो।

इस तर्ज पर गांधी जी तानाशाह भी थे –अपनी बात पर अडिग। मगर इरादा व लक्ष्य पवित्र। वे दूरदर्शी थे जो उनके सभी तात्कालिक उन्हें नहीं देख–समझ पाए। इसलिए जब नेहरू, सुभाष और सभी माने हुए नेताओं का विचार कुछ होता था तो गांधी –का कुछ!

असहयोग आंदोलन, प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध के समय की रणनीति, सभी में गांधी जी घोर विरोध के बावजूद अपने अभिमत पर अडिग रहते थे। यहां तक कि उनके निर्णय को देश के साथ धोखा करार दिया जाता था।

पर, गांधी जी उस हुकूमत के चरित्र को अच्छी तरह समझते थे जो निहत्थों पर गोलियां चलवाकर जलियांवाला बाग हत्याकांड करवा सकती थी, वहीं आवाम के भूख, दर्द और दर्द सहने की क्षमता को भी वे अच्छी तरह से समझते थे।

शायद इतने विरोधी या कहे सर्व–आयामों से पहलू को देखने–समझने की कूवत उनके किसी समकालीनों में नहीं थीं। निश्चित रूप से तब गांधीजी को नहीं समझा जा सका। या गलत समझा गया।

पुनः उस प्रश्न पर लौटते हैं –तो जनमत कौन ? वो निर्णय जो लोकप्रिय न हो मगर सबके हित में हो और चाहे वह एक व्यक्ति द्वारा व्यक्त हो। या भीड़ का निर्णय जो लोकप्रिय तो हो मगर सही नहीं। सबके हित में नहीं.....!

भीड़ का जनमत मगर गलत.....?

एक का जनमत मगर सही.....?

आज एक गांधी जो शायद देश का पहला प्रमाणिक (?) गांधीवादी है –कहां है गांधी जी जैसी कैफियत!

वो राजनीति की समझ ? वो संगठन की शक्ति ? वो आवाम की समझ ?

वो विरोधियों से सहानुभूतिपूर्वक संघर्ष भाव ?

वो मानव मूल्य जो गांधी जी ने दिए ?

ऐसे में दो पल का निर्णय 'एप्स' के भरोसे चले जाए तो आश्चर्य क्या.....! (ठीक वैसे ही आज मार्क्सवादी कहां हैं ? बंदूक लेकर जंगल में क्रांति फूंक रहे हैं ?)

वही कांग्रेस जो गांधी जी ने नेतृत्व किया।

यही कांग्रेस जो गांधी जी ही नेतृत्व कर रहे हैं! फर्क क्या है....!!

शेक्सपियर याद आते हैं –नाम में क्या रखा है....।

लब्बो–लुआब (मुआफ कीजिएगा गलत लफ्ज के लिए) ये कि जनमत को हमें पुनर्भाषित करना होगा। हमें विरासत से सीखना चाहिए। हमारे पूर्वजों ने अपूर्व योगदान दिया है। उसका सम्मान, उसका आभार हम उनसे ठीक–ठीक सबक लेकर ही अदा कर पाएंगे।

हमारे प्रबुद्ध पाठक विचार करें।

अटल बिहारी वाजपेई जैसी शख्सियत को इस जनमत ने प्याज फेंक कर मार दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र तैर जाने वाला चरित्र प्याज के छोटे से गड्ढे में जा गिरा।

यह भी जनमत था!

क्या हमारा अवाम जो प्रबुद्ध प्रजातंत्र का वाहक है –अपने जनमत पर विचार करना चाहेगा या महान नेताओं, गुरुओं को गाली बकता रहेगा.....। उसे आसमान से टूटते तारे की तरह 'अवतार' चाहिए –उसे क्या, उसे तो जनमत का अधिकार है। यह अधिकार कैसे और कहां से आया, किसकी बदौलत –इसकी खबर भी उसे है ? इनको तीन अधिकार हैं –खाना–पचाना और हगना.....! (और इंटरवेल में पादना)

और यही हम हैं असली जनमत के वाहक!!!

काव्य

मां का रिश्ता

मां के आगे कोई छोटा न बड़ा
ईश्वर भी होते उसके आगे एक बच्चा
आज की स्वार्थ भरी दुनिया में
मां का रिश्ता ही सबसे सच्चा।

रिश्ता कोई मायने नहीं रखता
मतलबी दुनिया में काम से वास्ता
होते सब झूठे रिश्ते नाते
मां ही होती सिर्फ वास्तविकता।

जीवन में सफलता पानी हो तो
मां के चरणो की पूजा करो
मां के ममतामयी स्नेह के आगे
शहनाई की धुन भी फीकी लगती।

मां द्वारा गायी मीठी लोरी
शांत शीतल लहर की ठंडक लगती
सदा ही कानों में मां की आवाज गूंजती
प्रेरणा की एक देवी दिखायी देती।

प्रा.डॉ.प्रकाश वि. जीवने
158, चंडिका नगर नं. –2 मानेवाडा बेसा रोड, नागपुर–440027
मो.–9420300854

18–गांधी और मार्क्स : एक नजर

यूं तो इस लेख के पहले लफ्ज से अब तक गांधी और मार्क्स को ही समझने की कोशिश होती रही है। फिर भी लगता है बहुत कुछ छूट रहा है और सही भी है –यहां बहुत कुछ छूटता ही रहेगा। ऐसे पाठ कभी पूर्ण नहीं होंगे। होते भी नहीं। मानव सभ्यता–संस्कृति को अपने गुरुओं से, अपनी अच्छी–अच्छी परंपराओं की मीमांसा करते हुए आगे की रोशनी बनते रहने का प्रयास ही सार्थक है। जब हम अपने महाकाव्य को लाल धागे से या कपड़े में लपेट कर उस पर अगरबत्ती–दिया जला कर 'पूजा' करने लगते हैं तो अवश्य ही हम अंधकार के कुएं में डूबे होते हैं। वह कुआं संस्कृति का सूख जाता है और मानवता प्रेत–पिशाचों में तब्दील हो जाती है। इतिहास और गौरवपूर्ण संस्कृति नारे लगा कर 'विजयी भाव' लहराने का नहीं, उनसे सीख कर आगे बढ़ने का नाम है आधुनिकता। प्रगति। सच्ची प्रगति।

आधुनिकता या प्रगति आंख मूंदकर किसी का हगुआ–पदुआ बनने का नाम भी नहीं कि वहां का माल उठा कर लाए और यहां रोप दिए। और आधुनिक जेंटलमैन बन गए।

इस लेख को लिखने का मकसद इतिहास बताना या घटना का जिक्र करना कतई नहीं। वे पहले से बहुत तादात में मौजूद हैं। बस, यह जरूरी समझा गया और बहुत जरूरी समझा गया तब जबकि इन दोनों को व्यर्थ समझा जाने लगा। प्रतीत होता है यही समय है जब आवाम और प्रबुद्ध पाठक इन्हें समझे। विचारे। फिर से विचारें। और विचार करते रहें। आज की ही भीड़ से, इस आम से कल कोई खास होगा। आज ही कोई युवा इनसे सीख कर इनके मूल्यों का धारण कर कल देश और विश्व की रोशनी बनेगा। लौ तो वही है, बस उसे जलाए रखना जरूरी है। लौ से लौ जले तो इससे बेहतर क्या!

एक और स्पष्टीकरण जरूरी लगता है। वैसे स्पष्टीकरण देना प्रतीत होता है मानो अपराध हुआ है। और हमारे आकाओं को शंका है और वे आपसे रूखे से प्रश्न पूछ रहे हैं।

सही है –ऐसे आका एक नहीं हजार मिलेंगे, दूर नहीं मा. ...जात पास मिलेंगे।

हां तो माननीय.....स्पष्टीकरण यह है कि –इन दो महामानवों की तुलना इसे न समझा जाए। वे दोनों अपनी–अपनी धुरी पर स्थित हैं। तुलना करना वैसे भी बड़ा घटियापा काम है। गुलाब और बेली की तुलना, तुलसी और नीम की तुलना। आम और अमरूद की तुलना! आम, आम है, बेली, बेली है।

दोनों की अपनी विशेषताएं हैं जिन्हें जानना दिलचस्प हो

सकता है।

सबसे पहले मशीन को लेकर। आप मशीन की जगह तकनीक, उद्योग शब्द भी लिख सकते हैं।

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि गांधीजी मशीन को लेकर सशंकित रहते थे। जबकि मशीन के आविष्कार को मानवता का वरदान समझते थे। मगर कब ? कब ऐसे आविष्कार वरदान थे और कब शंका के दायरे में ?

ऐसी मशीन जो मानवीय श्रम के भार को कम करे वह वरदान। ऐसी मशीन जो मानव को ही (श्रम को) भार बना दे वह वरदान कैसे हो सकती है ? पुनः ऐसी मशीन किसी को (मालिक, पूंजीपति, उद्योगपति) लक्ष्मीपति बना दे और करोड़ों श्रीहीन! बेरोजगार! –यह किस काम का....!

इसलिए गांधीजी मशीनों को लेकर बहुत गंभीर और सतर्क दृष्टि रखते थे। आविष्कार तो होते रहेंगे –उन्हें हमारी जरूरत कितनी और कब होनी चाहिए –इस पर आलोचनात्मक दृष्टि आवश्यक है।

मार्क्स के सिद्धांत मशीनों के अपव्यवहार और मनुष्य को रोबोट की तरह मशीनों के लिए जोते जाने के उपरांत –उनकी विवशता, दरिद्रता, अमानवीयता इत्यादि दृश्य देखने के बाद उनकी खूब सामाजिक–आर्थिक समीक्षा कर सिद्धांत के रूप में प्रतिपादित की गई। जिसका उद्देश्य था पूंजी का केंद्रीकरण न हो। ठीक यही चिंता गांधी जी की भी थी। मार्क्स ने सिद्धांत बनाए। उन्होंने समाज–अर्थ में 'द्वंदवाद' की स्थिति मान्य किया और बराबरी का लक्ष्य प्राप्त करने के मार्ग बताए।

यह अलग बात है कि जो मार्ग उन्होंने बताए उन रास्तों पर चलने के लिए एक नैतिक मनुष्य की आवश्यकता थी। और नैतिक मनुष्य था –गांधी!

नैतिक मानव के अभाव में सिद्धांत ज्यादा दिन चल नहीं पाया और राजनीतिक–आर्थिक जमीन पर फेल हो गया। या फेल कर दिया गया। क्योंकि जिस रोबोटों (कामगारों–गरीबों) को मनुष्य का दर्जा यह सिद्धांत देता था, वह मनुष्य होने की सुविधाएं तो प्राप्त किए, मगर मूल्य हासिल नहीं कर पाए। इसके लिए मार्क्सवादी निंदक मार्क्स को ही दोषी ठहराते हैं कि मार्क्स ने मनुष्य को 'साइको ह्यूमेन' नहीं समझा, अर्थात वह लालची–कपटी, स्वार्थी हो सकता है –कामगार से पूंजीपति बनने की चाह रख सकता है –ऐसा नहीं सोचा। अर्थात मार्क्स की थ्योरी में मनुष्य के 'लालच' को भी मान्य करना चाहिए था ?

ऐसे आलोचक कौन सी कड़क चाय पीकर विचार पेलते हैं ?

गांधी और मार्क्स दोनों अपनी–अपनी जरूरत और जमीन से उत्पन्न हुए थे। मानव की आजादी, समानता इनका प्रश्न था। पर, दोनों ही देश–काल की सीमाओं के परे थे। मार्क्स के सिद्धांत में जो वर्ग–संघर्ष का चरित्र दिखता है वह तो उनके आदर्शवादी राज्य की स्थापना का मात्र एक फेज है। यह प्रक्रिया है। इससे गुजर जाना है, ठहरना नहीं। मार्क्स का अंतिम लक्ष्य तो राज्य विहीन सत्ता है जहां समानता इस स्थिति में मौजूद है जैसे कबीलाई साम्यवाद! यह आदर्श राज्य है। शायद गांधी जी का रामराज्य! आलोचकों का यह भी कहना है कि गांधी जी को मार्क्स की तरह 'वर्ग–चरित्र' या 'वर्ग–संघर्ष' नहीं दिखता था।

दिखता था। खूब दिखता था। हमने इसी लेख में अहमदाबाद के मिल मालिक के साथ समझौता और संघर्ष देखा है। और, यह उस वक्त की बात है (1917–18) जब गांधी जी कांग्रेस के नेतृत्व में कूदे भी नहीं थे। चंपारण का किसान आंदोलन याद कीजिए।

बहुत वास्तविक कारण हैं और करीब है कि गांधी जी जो जमींदारों, व्यापारियों, पूंजीपतियों के प्राप्त सहयोग और स्वतंत्रता आंदोलन में उनके महत्वपूर्ण योगदान को देखते हुए तथा कांग्रेस कमजोर न हो –गांधी जी को अपना फोकस 'ब्रिटिश–राज' पर रखना पड़ा हो। पर, जैसा कि हम देखते हैं कि जैसे–जैसे स्वतंत्रता आंदोलन आगे बढ़ता चला जाता है –वामपंथी विचार कांग्रेस के अंदर फैलता है –गांधी जी निहित स्वार्थ को समझने लगते हैं। और इसलिए स्वयं गांधी जी इस बात से सहमत होते हैं कि बुनियादी ढांचागत मशीनरी, प्लांट सीधे–सीधे सरकारी हस्तक्षेप में रहे। अर्थात पब्लिक सेक्टर के अंतर्गत!

गांधीजी का निजी अनुभव, अपमान, तिरस्कार, असमानता –जो भी उन्हें मिला हो –टॉल्सटॉय के आदर्श या वैष्णव संस्कार –उनका निजत्व सार्वजनिक होता है। अर्थात गांधी व्यक्ति होकर भी व्यष्टि नहीं, समष्टि बन जाते हैं। यह एक सच्चे मानव का महामानव बनने तक की प्रक्रिया है। उनकी प्रयोगशाला उनके भीतर से, निजत्व से प्रारंभ होती है और पूरी दुनिया (आवाम) तक फैलती है। एक व्यक्ति की परिभाषा क्या हो सकती है ?

वैष्णव....., बैरिस्टर....., बापू....., राष्ट्रपिता....., टॉल्सटॉय के प्रशंसक....., कबीर के चितेरे....., सत्य.... न्याय के वाहक.....? दृढ़ प्रतिज्ञ ? जिद्दी ?

उसी तरह मार्क्स की क्या परिभाषा हो सकती है ?

भौतिक द्वन्यवाद ? साम्यवाद ? समाजवाद ? को–ऑपरेटिव सोसायटी ? ट्रेड यूनियन ? प्रोलेटेरियन ?

गांधी जी ने जहां अपने दुख–दमन को अपना हथियार बनाया वही मार्क्स ने लाखों कामगारों के शोषण को अपना सिद्धांत बनाया। हम इन्हें कैसे किसी परिभाषा में बांध सकते हैं ?

पूंजी या पूंजी के केंद्रीकरण को लेकर दोनों बेहद चिंतित थे। सारा खेल या सिद्धांत ही धन (पूंजी) को लेकर है।

गांधी जी को खतरा था कि ये मशीन कहीं धन को ज्यादा एकत्रित न कर दे और शेष को श्रीहीन! और मार्क्स को यही खतरा था इसलिए तो मजदूरों एकजुट हो –नारा दिया गया। यूनीयनें बनीं। ट्रेड यूनियन नेता। उत्पादन के ईकाई पर सभी का बराबर मालिकाना हक हो।

पर, ऐसी क्या चूक हो जाती है हमारे मानव समाज से कि लेनिन जैसे मार्क्सवादी पंथ के रचयिता को पूंजी –हां, इसके कई रूप हैं....., विदेशी पूंजी को अपने कार्यकाल में ही सोवियत रसिया के बुनियादी ढांचे की मरम्मत के लिए मंगानी पड़ गई थी। इसे 'दो कदम पीछे हटकर एक कदम आगे छलांग लगाना' बताया गया था ?

अर्थात एक तरह से निवेश के लिए विदेशी पूंजी आमंत्रित करना –पूंजीवादी रास्ते अख्तियार करना ?

ये आज भी गहरी मीमांसा का विषय है।

बस कुछ–एक सवाल उठाकर इस अध्याय का समापन करना चाहूंगा, ये कहते हुए कि गांधी या मार्क्स की विवेचना कभी खत्म नहीं होती। इसे हर पीढ़ी को देखना–समझना होगा। आगे चलना है –तो किस तरह ? पीछे लौटना है –तो कितना ?

सवाल है –क्या गांधी के आर्थिक चिंतन या मार्क्स के सिद्धांत में इस बात का ब्यौरा है कि एक स्वतंत्र राज्य अपनी सेना पर तोपों–बारूद और पंडुब्बियों के मद में और जवानों की तैनाती में कितना प्रतिशत खर्च करेगा ?

महामानव अक्सर मनुष्य की इस घृणा–युद्ध की राजनीति नहीं समझ पाते और भूल हो जाती है।

क्या आज का प्रगतिशील मानव इस चूक से सबक लेना चाहेगा ?

एक विचार तो बनता है।

काव्य

नज़्म नफरत निकाल के

दोस्ती का फूल
ये बेमिसाल हैं
इस फूल को यारा
रखना संभाल के।
आंखों का चैन हो
दिल का क़रार भी
मिलते नहीं मीत
तेरी मिसाल के।
इंसान हो अगर
इंसान की तरह
प्यार करो दिल से
नफरत निकाल के।
लम्बा है सफर ये
मुश्किल है डगर भी
हरेक क़दम अपना
रखना संभाल के।
लफ़्ज़ों का हार है
ये ख़त के रूप में
दिल से लिखा इसे
पढ़ना संभाल के।

ज़ाल अन्सारी
नई सदर तहसील रोड,
78, शेख चांद,
पीलीभीत–262001
मो–8755689299

पहुँच

एक अधिकारी के
रवैये से जब
नागरिक त्रस्त रहने लगे
तो उनकी शिकायत
उच्च स्तर पर करने लगे
परन्तु अफ़सोस
इस पर भी उनकी
कुर्सी नहीं हिली
तो लोगों को यह बात
बहुत खली
एक पत्रकार ने आखिर
पूछ ही लिया–
"इतनी शिकायतों के
बाद भी आप जमे हैं
राज़ क्या है?
सर! आपका अंदाज़ क्या है?"
वे मुस्कुराते हुए बोले–
"मित्र! मुझे हटाने के
सारे तरीके व्यर्थ जायेंगे
आपकी कलम और
आपके अख़बार भी
मेरी कुर्सी नहीं हिला पायेंगे
क्योंकि मैंने अब तक
जो "पहुँच" बनाई है
वे कब काम आएंगे?"
तो इस तरह
"पद" और "पहुँच" की
धौंस बताकर
अफ़सर लोगों को डराएंगे
धमकाएँगे
अपने कर्तव्यों से दूर भागेंगे
तो कैसे मेरे देश के भाग्य जागेंगे।

लक्ष्य

वह राही
लक्ष्य को
अपनी मुट्ठी में लिए
अनवरत चलता रहा
कंटकाकीर्ण पथ पर
भी नहीं डिगा
और पहुँच ही गया
अपनी मंज़िल तक।

वह राही
शायद जानता था
की ज़िंदगी में यदि
लक्ष्य बनाकर चला जाये
तो कुछ भी मुश्किल नहीं है
चाहे सागर की
गहराई नापना हो
या सारे जहाँ को
बाँहों में समेटना हो।

रमेश जैन 'राही'
'चंदेरिया पैलेस"
डोंगरगांव (छ. ग.)
मो.–9893863519

समाजसेवी

सीताराम गुप्ता
ए.डी.–106–सी,
पीतमपुरा
दिल्ली–110034
मो.–9555622323

अनिल कुमार जी से मेरी मुलाकात बहुत पहले हुई थी एक मित्र के यहां। समाज व राष्ट्रीयता की अवधरणा पर उनका लेक्चर सुनकर मैं वाकई उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। उनका लेक्चर ही प्रभावशाली और ओजपूर्ण नहीं था अपितु कौम की हर खिदमत करने के लिए भी वे तत्पर दिखलाई पड़ रहे थे।

समाज में व्याप्त समस्याओं और कुरीतियों को लेकर भी वे काफी चिन्तित थे। मित्र ने मुझे बताया कि अनिल कुमार जी के बड़े–बड़े लोगों से अच्दे संबंध हैं और अपनी बिरादरी के रिश्ते करवाने में भी रूचि रखते हैं।

एक दिन मैंने भी अनिल कुमार जी से कहा–''सर! हमारी बिटिया भी शादी के लायक हो गई है, उसके लिए भी कोई उपयुक्त वर हमें बतलाइए।''

''हां, हां, क्यों नहीं। मेरा काम ही भाइयों की सेवा करना है पर एक काम करना नरेन्द्र, बिटिया का बायोडाटा मुझे भिजवा देना।'' अनिल कुमार जी ने आश्वस्त करते हुए कहा।

मैं अगले दिन ही बिटिया का बायोडाटा लेकर अनिल कुमार जी के यहां पहुंच गया। मुझे देखते ही उन्होंने पूछा–''हां भई नरेन्द्र! कैसे आना हुआ ?''

मैंने उन्हें बीते कल की बात याद दिलाई और कहा–''अनिल कुमार जी! बड़ी बिटिया की शदी तो कई साल पहले कर चुका हूं। बेटे की शादी की मुझे कोई चिन्ता नहीं। बस सारी चिन्ता छोटी बिटिया की है। मेरे पास कुल मिला कर बारह–तेरह लाख रूपये हैं और ये सारे पैसे मैंने छोटी बिटिया की शादी के लिए ही संभाल कर रखे हैं।''

मैं और कुछ कहना चाहता था पर अनिल कुमार जी ने बीच में ही मेरी बात काटते हुए कहा–''अरे! मुझे क्या समझा रहा है ? मुझे पहले से ही अंदाजा था कि तेरा बजट ऐसा ही होगा, दरम्याना–सा, कोई दस–बारह लाख का।'' अनिल कुमार जी ने फिर पास ही रखी एक फाइल की ओर इशारा करते हुए कहा–''बायोडाटा सामने मेज पर रखी फाइल में रख दे। इस बजट में यदि कोई लड़का मिलता है तो देखता हूं।''

अपनत्व

पूरी सीढ़ी में काफी चहल–पहल थी। छोटे–छोटे कई बच्चे ऊपर–नीचे आ–जा रहे थे और खेलकूद रहे थे। दरअसल शर्माजी के यहां मेहमान आये हुए थे। उनकी बहन के बेटे की शादी थी। वो अपने पूरे परिवार के साथ शादी का निमंत्रण देने और भात न्यौतने के लिए आई हुई थी। शर्माजी ऊपर वाले फ्लैट में रहते हैं। उनके नीचे वाले फ्लैट में गुप्ताजी का परिवार रहता है। दोनों परिवारों में बड़ी घनिष्टता है। शर्माजी के परिवार ने शाम की चाय पर गुप्ताजी के परिवार को भी बुला लिया था। उनकी बहन ने गुप्ताजी के परिवार को भी शादी का कार्ड दिया और आने का आग्रह किया। चाय के साथ खाने–पीने का इतना अधिक सामान था कि सबके पेट भर गये। मिसेज गुप्ता ने कहा कि आज रात खाने की छुट्टी। खाते–पीते और गपशप करते शाम कब बीत गई पता ही नहीं चला। चाय के बाद जब गुप्ताजी का परिवार बाहर निकला तब तक बाहर अंधेरा हो चुका था और सबने अपनी–अपनी बाहर की लाइटें जला ली थीं। सीढ़ियों में कॉमन लाइटें नहीं हैं लेकिन सबके दरवाजों पर रोशनी की अच्छी व्यवस्था है और देर रात तक लाइटें जलती रहती हैं। गुप्ताजी के घर के बाहर तो कभी–कभी सारी रात ही लाइटें जलती रहती हैं। जब गुप्ताजी परिवार जाने लगा तो मिसेज शर्मा ने मिसेल गुप्ता से यूं ही अपनापन जताने के लिए कहा–''आज मेहमानों को जाते–जाते देर हो जायेगी। आप अपनी लाइटें जलती रहने देना।''

''ये भी कोई कहने की बात है ?'' मिसेज गुप्ता ने भी उतने ही अपनेपन से जवाब दिया। डिनर के बाद जब मेहमान जाने के लिए बाहर निकले तो देखा कि नीचे सीढ़ियों में पूरी तरह से अंधेरा पसरा हुआ था। सभी लाइटें बंद थीं। अगले दिन मिसेज शर्मा ने शिकायत करते हुए मिसेज गुप्ता से कहा–''अरे भई! वैसे तो आपकी लाइटें सारी–सारी रात जलती रहती हैं। कल कहने के बावजूद लाइटें जल्दी बंद कर दीं।''

मिसेज गुप्ता ने जवाब दिया–''अब हमें क्या पता था कि आपके मेहमान इतनी ज्यादा देर से जायेंगे ? फिर रात को सोने के बाद कौन उठता लाइटें बंद करने ?''

नई रैक

राम नगीना मौर्य
5/348, विराज खण्ड,
गोमती नगर,
लखनऊ–226010, उ.प्र.
मो.–9450648701,

पढने–लिखने–गढ़ने का शौक भी अजीब शगल है। घर के सदस्य तो अब नीलाम्बर प्रसाद जी के इस शौक को 'सनक की हद' तक का नाम दे चुके हैं।

घर में पत्र–पत्रिकाओं, किताबों, अखबारी कतरनों आदि का इस कदर जमावड़ा हो गया है कि लगभग सभी कमरे की आलमारियों में इन्हीं का कब्जा हो गया है। उनका अध्ययन–कक्ष तो...भानुमती का पिटारा सा दिखता है। पत्नी तो उनके शौक से इस कदर आज़िज आ गयी हैं कि इसे उनका दिमागी फितूर मानके, इन पर एक पैसे भी खर्च करने को फिजूलखर्ची मानती हैं। हालांकि तब भी वो, उनसे बच–बचाकर....कोई–न–कोई नयी किताब या पत्रिका आदि महीने–पन्द्रह दिन में खरीद ही लाते हैं।

आलमारियों में बेतरतीबी से ठूंसी पड़ी किताबें, पत्र–पत्रिकाओं को रखने वास्ते क्या इन्तजाम किया जाय? नीलाम्बर प्रसाद जी कुछ समझ नहीं पा रहे थे।.....'अगर एक नई रैक बनवा ली जाये तो....सभी सामग्रियां करीने से रखी जा सकेंगी ?'....नीलाम्बर प्रसाद जी ने बैठे–बैठे एक दिन सोचा।

''घर में कोई नई रैक–फैक नहीं आयेगी, न किताबें–कापियां और कोई मैगजीन्स ही। जो हैं.....इन्हीं में पढ़िये–लिखिये–गढ़िये, और अपना भविष्य संवारिये।''

नीलाम्बर प्रसाद जी ने जब किताबें, कापियां, पत्रिकायें, डॉयरियां आदि रखने वास्ते....एक नई रैक बनवाने के बारे में अपने सुविचार पत्नी से साझा किये तो उन्होंने उनके प्रस्ताव को सिरे से ही खारिज करते, उद्घोषणा की।

''बहुत हुआ लिखना–पढना–गढ़ना। ये लिखने–पढने का शौक, अभी ठण्डे बस्ते में डाले रहिये। ठेकाने से नौकरी कीजिए। एक उत्तम और कुशल गृहस्थ की भांति बाल–बच्चों–परिवार की जिम्मेदारी निभाइये। लोग पढ़ाई खत्म करने के बाद नौकरी करते हैं, और ई बड़का–भारी लिक्खाड़ की पोंछ बने हैं। लिखना–पढ़ना ही है, तो रिटॉयरमेंट के बाद अपने शौक पूरे कीजियेगा।''

उम्मीद के अनुसार ही, नीलाम्बर प्रसाद जी पर उपरोक्तानुसार आप्त–वचनों....? के बौछार करते उनकी पत्नी ने अच्छा–खासा लेक्चर झाड़ दिया। पर वे भी मान गये हों, अपना सा मुंह लेकर रह गये हों, कहां सम्भव था? धुन के पक्के.....जो ठहरे। दिमाग में, एक ठो नई रैक बनवाने की सनक सवार हो गयी। धुन समा गयी, तो समा गयी।

अगले दिन, सुबह टहलने जाते वक्त, उन्होंने नुक्कड़ वाले कारपेन्टर से जाकर इस बाबत चुपचाप जानकारी हासिल की, और खर्चे का हिसाब– किताब लगवाया।

''अगर किताबें– कापियां रखने वास्ते, चार–बाई–छः की शेल्फ युक्त, एक ठो रैक बनवायी जाये, तो कितना पैसा खर्च हो जायेगा?'' कारपेन्टर की दुकान के सामने ही, बोरसी के इर्द–गिर्द बैठे तीन–चार लोगों को कउड़ा तापते देख कर, उन्होंने उनमें से एक से प्रश्न किया।

''कितने खाने रहेंगे? और गहरान कितना रहेगा बाउ जी?'' उनमें से एक, जो हेड–कारपेन्टर था, ने थोड़ी उत्सुकता दिखाते प्रति–प्रश्न किया।

''अऽरे भाई...किताबें– कापियां रखनी हैं, ज्यादा से ज्यादा एक फुट...गहरान, और खाने भी लगभग एक–एक फुट के अन्तराल पर ही रहेंगे।'' उन्होंने एक विशेषज्ञ सरीखे, समझाने के अन्दाज में, उसे समझाना चाहा।

''ठीक है....मैटेरियल आपका होगा कि हमारा?'' कारपेन्टर ने बात आगे बढ़ाई।

''क्या–क्या मैटेरियल लगेगा, लिखा दो, तो मैं ही लेता आऊँगा।'' नीलाम्बर प्रसाद जी ने मन–ही–मन सोचा...पता नहीं ये लोग कैसा मैटेरियल लगायें? वैसे भी वो अव्वल दर्जे के काम के पक्षधर हैं। मैटेरियल और काम में, कोई समझौता नहीं चाहते थे।

''तो लिखिए।'' कारपेन्टर ने भी मुस्तैदी दिखाई।

''हां, पर लेबर–चार्ज कितना देना होगा?'' रैक के लिए जरूरी सामग्री वगैरह लिखवाने से पहले वो पूरी तरह तसदीक कर लेना चाहते थे। इस बारे में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ना चाहते थे, ताकि बाद में कोई झांय–झांय...चिक्–चिक् न हो। लेबर–चॉर्ज के बारे में उन्होंने विस्तृत जानकारी चाही।

''बाउ जी, जितनी बड़ी आप बताऽय रहे हैं, उतनी बड़ी रैक की बनवाई डेढ़ हजार रूपये होगी।'' रैक की लम्बाई–चौड़ाई के हिसाब से कारपेन्टर ने अपने मोबॉयल के कैलकुलेटर में गुणा–भाग करके लेबर–चार्ज बताया।

''पर ये तो बहुत ज्यादा है?'' नीलाम्बर प्रसाद जी ने चेहरे पर आश्चर्यमिश्रित, क्षुब्ध–भाव लाते, जिज्ञासा की।

''आप कहीं भी जाकर पूछ लीजिए वॉर्ड–रोब बनवाने का यही रेट है।'' कारपेन्टर ने उनकी जिज्ञासा का यूँ, सहज समाधान करना चाहा।

''पर मैं कोई वॉर्ड–रोब थोड़े न बनवा रहा हूँ? अऽरे... किताबों की एक ठो सिम्पल सी रैक ही तो है, जो आगे से

खुली, और पीछे से बन्द होगी। मात्र....इतना सा ही तो काम है? ज्यादा से ज्यादा एक दिन का लेबर–चार्ज ले लीजिएगा।''. नीलाम्बर प्रसाद जी ने कारपेन्टर को पुनः एक विषय–विशेषज्ञ की भांति, सहजतापूर्वक समझाना चाहा।

''देखिये, बाउ जी, ये काम इतना आसान नहीं है, जितना कि आप समझ रहे हैं। कहने और करने में जमीन–आसमान का फरक होता है। बात यहां सरल या कठिन का नहीं है। बात, मेहनत, कारीगरी और फिनिशिंग–टच का भी है। अऽरे. ..आप असली और नकली कारीगरी का फरक भी तो समझिये। आप जैसे बताऽय रहे हैं, हम लोग वैसे काम नहीं करते।''

नीलाम्बर प्रसाद जी तो कारपेन्टर की वाक्पटुता पर हतप्रभ से निरूत्तर, उसे देखते ही रह गये। असली–नकली की उसकी इस व्याख्या पर उन्हें बरबस ही ये श्लोक याद आ गया।...*''हंसः श्वेतो वकः श्वेतो को भेदो वक हंसयोः। नीरक्षीरविभागे तु हंसो हंसो वको वकः।।''*

''तो फिर कैसे काम करोगे?''

''हम लोग ठेके पर काम करते हैं....बाउ जी।''

''ठीक है। तो फिर वही बता दो, ठेके पर दिहाडी का क्या रेट है?'' इस बार उन्होंने तनिक धृष्टापूर्वक पूछा।

''देखिये...दिहाड़ी का रेट तो पांच सौ रूपये हैं। ठेके का रेट जान कर आप क्या करेंगे? आपको रैक बनवानी है कि ठेकेदारी करनी है? अगर बनवानी है, तो सौ–पचास रूपये, ऊपर–नीचे समझ लिया जायेगा। रैक हो या वॉर्डरोब, बनवाने में लेबर का बस्स् उन्नीस–बीस का ही फरक होता है।'' कारपेन्टर भी सामने वाले को समझाने में मंझा हुआ उस्ताद था।

''अच्छा तो...अब तुम ये बताओ कि मैंने रैक की जो साइज बताई है, वैसी रैक बनाने में तुम्हें कितने दिन लग जायेंगे?''

''बाउ जी...कल हमारा तिहवार है। हम लोग आज शाम को ही गॉव चले जायेंगे। अगर रैक बनवानी हो, हमारे लेबर–चॉर्ज से संतुष्ट हों, तो आप आज ही मैटेरियल गिरवा दीजिए। रैक, आज के आज ही बन के मिल जायेगी।'' कारपेन्टर ने उन्हें विस्तारपूर्वक समझाया।

''फिर भी, क्या तुम्हें नहीं लगता कि तुम लोग, सिम्पल सी एक रैक की बनवाई, कुछ ज्यादा नहीं चॉर्ज कर रहे हो?'' नीलाम्बर प्रसाद जी अभी भी बॉरगेनिंग के मूड में थे।

''अऽरे बाउ जी महंगाई भी तो देखिये। आखिर, हमें भी तो खाने– पीने– धोने– निचोड़ने को कुछ चाहिए कि नहीं?''

''तो महंगाई क्या सिर्फ तुम्हीं लोगों के लिए है, हमारे लिए नहीं है?'' बात–ही–बात में नीलाम्बर प्रसाद जी को भी ताव आ गया।

''बेफालतू में बहसबाजी क्यों कर रहे हैं? कहा न! बाउ जी, सौ–पचास रूपये, कमती–बेसी...समझ–बूझ लिया जायेगा।'' माहौल में बढ़ रही गर्मी को भांपते, कारपेन्टर ने सूझ–बूझ से काम लिया।

''अच्छा तो ठीक है...फिर, क्या–क्या सामान–वामान लगेगा, लिखवा दीजिए।'' नीलाम्बर प्रसाद जी ने जैसे राहत की सांस ली हो। उन्होंने जेब से एक पुर्जा और पेन निकाला।

''लिखिये...दो बोर्ड आठ–बाई–चार के। छः–बाई–चार की एक प्लाई।''

''हूं...हूं...?''

''ढाई सौ ग्राम कील, डेढ़ इंची। ढाई सौ ग्राम कील, दो इंची। सौ ग्राम कील बिना मत्थे की, डेढ़ इंची।''

''हूं...हूं...?''

''पांच सौ ग्राम सरेश। पैंतिस फिट बीडिंग।''

''ये बीडिंग किसलिए?''

''अऽरे, खूबसूरती के लिये, अउर काऽहे लिए? रैक के किनारे–किनारे बॉर्डर भी तो लगवायेंगे कि नहीं?''

''उसमें कितना पैसा लग जायेगा?''

''अब बनवाऽय ही रहे हैं, इतना खर्च भी कर रहे हैं, तो पैसे का मुंह मत देखिये बाउ जी। ज्यादा से ज्यादा दो–ढाई सौ रूपये और खर्च हो जायेंगे।''

''भई देखो, इस काम के लिए मेरा बजट बहुत ज्यादा नहीं है। केवल जरूरी–जरूरी सामान ही लिखवाइये। ये सब मैटेरियल, ठीक–ठाक रेट में कहां मिल जायेंगे, आप लोगों का तो रोज का ही काम है, कोई ठीक–ठाक दुकान भी बताइये?''

''हमने उतना ही सामान लिखवाया है बाउ जी, जितने की जरूरत है, इसमें जास्ती एक सामान भी नहीं है। देखिये, जहां तक मैटेरियल की बात है, नाका और चौक बाजार वाले तो सिर्फ कहने को हैं। किराये–भाड़े में भी आपका पैसा खर्च हो जायेगा। आप ऐसा करिये, तिराहे पर चले जाइये। सामने ही 'नौरंगी प्लॉई मॉर्ट' की दुकान है। वहां ये सारा सामान आपको वाजिब रेट पर मिल जायेगा। वहीं, ये भी बता दीजिएगा कि सामान 'गुड्डू पहलवान' के यहां जाना है। वो खुद ही अपने ठेले पर लदवा कर सब सामान यहां गिरवा देंगे।'' कारपेन्टर ने सड़क की तरफ आकर, हाथों के इशारे से रास्ता दिखाते, नीलाम्बर प्रसाद जी को विस्तार से समझाया।

''ठीक है...मैं सामने के ए.टी.यम. से पैसे निकलवा लेता हूं। फिर आपने जो–जो सामान नोट कराये हैं, उन्हें नौरंगी लाल जी के यहां जाकर, ऑर्डर्स नोट कराए देता हूं। पर कोशिश कीजिएगा रैक आज ही बन जाए। अब मैं चलूं न...?''

''हां बाउ जी, ठीक है। सामान, जितना जल्दी भिजवा देंगे, काम उतनी ही जल्दी स्टॉर्ट हो जायेगा, और रेडी भी।''

''ठीक है। मैं कोशिश करता हूं, जल्द से जल्द, सारा सामान भिजवाने की।'' कहते नीलाम्बर प्रसाद जी ए.टी.एम. की ओर चल पड़े। ए.टी.एम. से रूपये निकाल कर, कारपेन्टर के बताये अनुसार, वो 'नौरंगी प्लॉई मॉर्ट' पहुंचे।

सुबह का समय होने के कारण दुकान में दिख रहे सज्जन, अभी झाड़–पोंछ में मशगूल थे। नीलाम्बर प्रसाद जी को देख कर उन्होंने जल्दी–जल्दी कोने में रखी, फ्रेम कराई गयी तस्वीर के समक्ष, एक अगरबत्ती सुलगाई। फिर पूरी दुकान के अन्दर चक्कर लगाते, अगरबत्ती घुमायी। तत्पश्चात् तस्वीर के फ्रेम में ही, अगरबत्ती खोंसने के बाद, नीलाम्बर प्रसाद जी से मुखातिब हुए।

''हां...सर जी, नमस्कार। बताइये? क्या सेवा की जाये?'' दुकानदार ने खींसे निपोरते कहा।

''मुझे ये...सारे सामान चाहिए थे? आपके यहां मिल जायेंगे?'' नीलाम्बर प्रसाद जी ने अपने हाथ में ली पुर्जी दुकानदार के सामने बढ़ाई।

''जी हां, सब कुछ मिल जायेगा। कहां पहुंचवाना है?'' दुकानदार ने पुर्जे में लिखी सभी सामग्रियों को सरसरी तौर, पढ़ने के बाद मुण्डी हिलाते उनकी तरफ प्रश्नाकुलता भरी निगाहों से देखा।

''गुड्डू पहलवान कारपेन्टर के यहां। पर जरा रेट... ठीक–ठाक लगा लीजिएगा। उन्होंने ही आपकी दुकान का नाम सुझाया है।''

''आप निशाखातिर रहिए। खरीद वाला, वाजिब रेट ही लगाऊंगा। शिकायत का कोई मौका नहीं दूंगा। लिस्ट के हिसाब से सारा सामान तीन हजार सात सौ चालिस रूपये का पड़ेगा।'' दुकानदार ने कैलकुलेटर पर हिसाब लगाते बताया।

''कुछ और कम करिये। मेरा बजट इतना नहीं है।''

''देखिये सर जी, बोहनी के टाइम में आपको वाजिब रेट लगाया है।''

''थोड़ी और गुंजायश कीजिए।''

''ठीक है, आप राउण्ड–फीगर में सैंतिस सौ दे दीजिएगा।''

''ये लीजिए छत्तीस सौ, अब इससे ज्यादा नहीं दे सकता।''

''अब क्या कहूं आपसे? सिर्फ सौ रूपये की ही तो कमाई हो रही है इसमें। सुबह–सुबह आप लोग भी चिरौरी करवाते हैं। सौ रूपये तो ठेले वाला ही, माल पहुँचवाई का ले लेगा। खैर...लाइये।''

''लेकिन सामान जितना जल्दी हो सके पहुंचवा दीजिएगा।''

''अब आप निश्चिन्त होकर जाइये। बस्स आधे घण्टे में सारा सामान 'गुड्डू पहलवान' के यहां पहुंच जायेगा।'' छत्तीस सौ रूपये चुकता करते, आश्वस्त होकर नीलाम्बर प्रसाद जी दुकान से बाहर आये।

नई रैक, बनने का ऑर्डर देने के बाद घर आकर नीलाम्बर प्रसाद जी जल्दी–जल्दी नहा–धोकर, नाश्ता करके ऑफिस के लिए निकल पड़े।

'जंगल में मोर नाचा किसी ने न देखा...' नीलाम्बर प्रसाद जी ऑफिस में अपने काम में व्यस्त थे, कि उनके मोबॉयल की 'रिंग–टोन' गूंजी। उन्होंने सामने दीवाल पर टंगी घड़ी की ओर देखा। उस समय शाम के पांच बज रहे थे। मोबॉयल की स्क्रीन में देखा, बिटिया का फोन था।

''हां, हलो...बताओ...?''

''...''

बिटिया ने उधर से बताया था कि कोचिंग–क्लॉस से छूटने के बाद वो अपनी सहेली के घर चली गयी है। ऑफिस से लौटते वक्त उसे, उसकी सहेली के घर से, लेते हुए घर जाना था।

''ठीक है, मैं बस्स...निकलने ही वाला हूं। तुम तैयार रहना। मैं तुम्हारी सहेली के घर के सामने पहुंचकर 'मिस्ड–कॉल' करूंगा। तुम फौरन बाहर निकल आना।'' नीलाम्बर प्रसाद जी ने बिटिया को आश्वस्त किया।

''...''

''ओ.के. बॉय सी.यू.।''

ऑफिस से निकलकर, नीलाम्बर प्रसाद जी बिटिया की सहेली के घर गये। वहां से उसे लेकर, वो कारपेन्टर के यहां पहुंचे। वहां पहुंच कर उन्होंने देखा कि...दुकान में एक किनारे, रैक बनकर तैयार खड़ी है, जो बहुत अच्छी तो नहीं पर...बहुत खराब भी नहीं लग रही थी।

''हां, भई, गुड्डू पहलवान जी...रैक तैयार हो गई?'' नीलाम्बर प्रसाद जी ने अति–उत्साहित हो कारपेन्टर से पूछा।

''आपके सामने इत्ता बड़ा ढांचा तैयार खड़ा है, खुद ही देख लीजिए।'' कारपेन्टर ने भी उत्सुकता से जवाब दिया।

''हां, देख तो मैं भी रहा हूं। अच्छा अब एक दाम बता दो। इसकी बनवाई कितनी देनी है?'' नीलाम्बर प्रसाद जी ने अंतिम रूप से रैक की बनवाई जाननी चाही।

''बाउ जी, दो हजार रूपये हुए।'' कारपेन्टर ने तनिक दृढ़तापूर्वक कहा।

''लेकिन...लेबर–चॉर्ज तो डेढ़ हजार रूपये तय हुआ था? ये पांच सौ एक्स्ट्रा...काहे बात के लिए?'' नीलाम्बर प्रसाद जी तनिक आवेश में आ गये।

''अऽरे बाउ जी! हम, जुबान के पक्के लोग हैं। हम लेबर–क्लॉस जरूर हैं...बाकी बेईमान नहीं हैं। हमें आज ही गांव जाना है, इसीलिए...एक ही दिन में कुलाबें मिलाते,

आपका काम दिन–भर में निबटा दिया। ठेके पर कराते तो कम–अज–कम, तीन दिन का था। हम तीनों भाइयों ने सारा काम छोड़–छाड़ कर आज सिरफ आपका ही काम किया है। देखिए, एक दम फस्सग्लॉस काम किए हैं कि नहीं?''

''तुम्हारे हिसाब से ही अगर देखा जाय। एक आदमी की दिहाड़ी पांच सौ रूपये हुई, तो तीन आदमी की दिहाड़ी पन्द्रह सौ रूपये ही तो बनते हैं न?''

''अऽरे बाबू जी जरा रैक की ड़िजायन...फिनिशिंग भी तो देखिये? कहीं कोई जोड़ नहीं दिखेगा आपको। हमनें एकदम लल्लन–टॉप काम किया है। कोई हमारे काम में रत्ती–भर भी नुख्श निकाल दे, तो जो कहिए, बाजी हार जायेंगे।'' कारपेन्टर ने भी उनके तर्क की धार को यूं कुन्द किया।

''अऽरे भई, मैं यहां तुमसे हारी–बाजी करने...नहीं आया हूं। अच्छा, ये लो पन्द्रह सौ रूपये। मैं बस्स्...इतना ही दे पाऊंगा। इस रैक के चक्कर में मेरा बजट पहले ही बिगड़ चुका है। इससे ज्यादा एक पैसा भी नहीं दे सकता।

''क्या बाउ जी! आप लोग भी ऐसे कामों में जब कंजूसी करने लगते हैं न! तो अच्छा नहीं लगता। अऽरे, अगर इसे आप ठीक से 'पेण्ट–वॉर्निश–पॉलिश' करवा देंगे, तो ये पच्चीसों साल तलक चलेगा। चार लोग तारीफ ही करेंगे। हमारा काम बोलता ही नहीं, दिखता भी है। कम–अज–कम कुछ तो सोचिए?''

''अच्छा ये लो...तीनों लोगों के लिए सौ–सौ रूपये और रक्खो। कुल अट्ठारह सौ रूपये हो गये। मैं इससे ज्यादा और नहीं दे सकता। अब...इसे मेरे घर तक पहुंचवाओ?'' नीलाम्बर प्रसाद जी ने जैसे अन्तिम फैसला दिया।

''बाउ जी, अभ्भी, ठेलिया से पहुंचाए देता हूं।''

अट्ठारह सौ रूपये लेने के बाद कारपेन्टर ने वहां मौजूद अन्य लोगों की मदद से रैक को अपने ठेले पर लदवाया, और नीलाम्बर प्रसाद जी के स्कूटर के पीछे–पीछे उनके घर तक आया, और घर के सामने ही दुकान लगाने वाले बरेठा की मदद से...रैक को अन्दर कमरे में रखवाकर चला गया।

''ये रैक कहां से उठा लायें? कितने की है?'' चूंकि नीलाम्बर प्रसाद जी की पत्नी को, उनके इस... 'इन्नोवेटिव–स्कीम'...? के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, सो नई रैक देखकर आश्चर्य–भाव पूछा।

''अट्ठारह सौ रूपये की है।'' बिटिया, जो नीलाम्बर प्रसाद जी के साथ ही घर लौटी थी, ने कारपेन्टर को रैक का लेबर–चार्ज देते समय उसने जो कुछ भी देखा था, अपनी मम्मी को वही बता दिया।

''अऽरे वाह...अट्ठारह सौ रूपये में इतनी बड़ी रैक! ये तो बहुत ही बढ़ियां हैं।'' नीलाम्बर प्रसाद जी ने महसूस किया कि उस नई रैक का दाम सुनकर उनकी पत्नी ने मधुरे–मधुरे मुस्कियाते...लगभग ठीक–ठाक ही रेस्पॉन्स किया था।

अब वो पत्नी को कैसे समझाते कि बिटिया ने तो सिर्फ कारपेन्टर को लेबर–चार्ज ही देते देखा था। बाकी, प्लाई–बोर्ड–कील–सरेश–बीडिंग आदि के चॉर्ज के बारे में तो उसने कुछ बताया ही नहीं? फिर बिटिया को इसके बारे में कुछ पता भी तो नहीं था?

चूंकि पत्नी ने आगे और कुछ पूछने की जरूरत नहीं समझी, तो उन्होंने भी इस 'काकतालीय–न्याय'...? को स्वीकारते...मौन साध लिया।

खैर...। नीलाम्बर प्रसाद जी के इस काम से पत्नी बेहद खुश थीं कि वो कभी–कभी, ठीक–ठाक निर्णय भी ले सकते हैं। फिर...उनकी किताबों, कापियों, डॉयरी, पत्र, पत्रिकाओं, अखबार की कतरनों के बण्डल आदि को रखने वास्ते, घर में एक प्रॉपर जगह भी तो हासिल हो गयी थी।

''अब आपके सारे कागज–पत्तर आदि इसी रैक में आ जायेंगे। कभी मौंका मिले तो थोड़े और पैसे जोड़ कर, इसमें लकड़ी के फ्रेम जड़े...शीशे लगे हुए एक जोड़ी पल्ले भी लगवा लीजिएगा।'' पत्नी के मुखार–बिन्द से ऐसी बातें सुन उन्हें ऐसा लगा जैसे पत्नी ने उनके लिखने–पढ़ने के शौक का समर्थन करते...मान्यता दे दिया हो?

''देखना, एक दिन मेरी कहानियां अवश्य छपेंगी, और इन्हें भरपूर पहचान भी मिलेगी।'' पत्नी के अभूतपूर्व–उत्साह...? को देखते वो भी अपनी प्रगल्भता छुपा न सके। संवाद की कड़ियां जुड़ते देख, उन्होंने बात–चीत को आगे बढ़ाना चाहा।

''हां–हां...देख रही हूं। जब से शादी करके आई हूं, तब से आपके ये कागज–पत्तर ही तो सहेज रही हूं। बेवजह के कागज–पत्तर इकट्ठा करने का क्या फायदा? इससे धीमें–धीमें इन पर धूल–गर्द ही तो जमा होती रहती हैं? कमरा भी कबाड़ जैसा दिखने लगता है।''

''हां, चाहता तो मैं भी हूं...इनमें से कुछ सामग्रियों को, जो काफी पुराने हो गये हैं, छांट– बीन कर हटा दूं। पर मौंका ही नहीं मिल रहा।''

''सोचती हूं, कि किसी दिन जब आप दफ्तर में हों, उसी समय किसी कबाड़ी वाले को बुलाकर, आपकी दिक्कत का समाधान मैं खुद ही कर डालूं?''

''अऽरे! नहीं–नहीं, भाग्यवान्, ऐसा कदापि न करना? मैं खुद ही किसी दिन समय निकालता हूं।'' नीलाम्बर प्रसाद जी ने भी झट मरहम–पट्टी करते, पत्नी को अपनी जान मुतमैयन करने की कोशिश की।

अब वे पत्नी को कैसे समझाएं कि सृजनात्मकता, उतावलेपन

का नहीं, बल्कि असीम धैर्य का काम है। सतत प्रयास करना पड़ता है। पचीसों सभा–गोष्ठियां–सेमिनार आदि अटेण्ड करने पड़ते हैं। पचासों स्वनामधन्य लोगों से मिलना–जुलना होता है। बीच–बीच में परम्परागत तो कभी प्रगतिशील विचारकों से भी सम्पर्क साधना पड़ता है। कभी फलदायक तो कभी बेकार की बात–बतकहियों में बहुमूल्य वक्त जाया करना पड़ सकता है। तब कहीं जाकर ढ़ंग की चार लाइनें...लिखने का हुनर आता है।

नई रैक बनवाने के गौरी–शंकर प्रयास के उपरान्त, उसमें जमा कर रखीं पत्र/पत्रिकाओं, किताबें आदि देखकर उन्हें वही सुख महसूस हो रहा था, जो किसी सेठ साहूकार को अपनी तिजोरी देखकर होता होगा।

चूंकि...नीलाम्बर प्रसाद जी नई रैक बनवाने में सफल हो गये थे, और अनजाने में ही, या कह लीजिए संयोगवश, घर में कोई अप्रिय स्थिति भी उत्पन्न नहीं हुई। अतः उन्होंने भी नई रैक की सही लागत के बारे में मौन साधना ही उचित समझा।

काव्य

विश्वगुरु की राह पर

सरस्वती के मन्दिर में
सात साल के बच्चे की हत्या
पाँच साल की बच्ची से बलात्कार
लड़कियों को छेड़ते आचार्य
अब आश्चर्यचकित नहीं करते
भारत की भीड़ को
जो पढ़ती है आये दिन
ऐसे ही समाचार,
फिर भी विश्वास है
कि हम बनेंगे विश्वगुरु
बस, थोड़ी देर और रुकिए
होने ही वाला है कोई "चमत्कार"
यह आश्वासन सुनते–सुनते
बीत गये कई साल।
और यह भी तो चमत्कार ही है
कि झूठ पर करने लगे हैं हम
इतना विश्वास।

शिक्षा

शिक्षा का व्यापारीकरण
किया किसने ?
गाँव की भोली को
कोठे तक पहुँचाया किसने ?
सवाल केवल दो हैं
जिन्हें
न कोई पूछता है
न कोई उत्तर देना चाहता है।

विद्या

भौतिक भव्यता के आकाश में
छितरा है डार्क मैटर।
वहाँ कक्षायें लगेंगी
फ़ोटॉन्स की
और बहेगी एक ज्ञानगंगा
जिसमें होंगे चमकते हुये
असंख्य सूर्य।
विश्वास किया था
वंचितों ने
और सौंप दिया अपना सब कुछ
भव्यता के अहंकार में
सिर उठाये विद्यालय के
प्राचार्य को,
फिर छले गये
लूटे गये
और हो गये विवश
बहाने को अश्रु
शेष जीवन भर।
और तब जान पाये
यह रहस्य
कि शिक्षा के बाज़ार में
विद्या कब बिकी है भला!

डॉ. कौशलेन्द्र
सनसिटी, लालबाग,
जगदलपुर–494001 छ.ग.
मो.–9424137109

एक ही वृक्ष की

मैंने क्रोध से देखा था
उस गंवार को
जिसने कहा था एक दिन
कि आधुनिक विद्यालय
और चकलाघर
दोनों शाखायें हैं
एक ही वृक्ष की
जो डूबी हैं पूरी तरह
गहन अंधकार में
और
जहाँ नृत्य करती है लक्ष्मी
सुकुमार लोगों के चीत्कार पर।
अब मुझे भी लगने लगा है
कितना सच कहा था
उस अशिक्षित ने
जिसे
इतने विलम्ब से समझ पाया हूँ मैं।
सचमुच
यह देश कितना मुग्ध है
मृगया संस्कृति पर!

स्मार्ट सिटी की धुंध में दुष्यंत की स्मृतियाँ

पता नहीं
यह आश्वासन है
स्मृतियों के विस्थापन का
या सुनिश्चित् उपक्रम है
स्मृतियों के उन्मूलन का,
किंतु इतना तो स्पष्ट है
कि नहीं है
तमसो मा ज्योतिर्गमय का आदर्श
दिख रहा बस
तमस है... तमस है...
तमस रचित षड्यंत्र है।
ढहा दिया
साहित्यिक असंवेदनशीलता
के ज्वार ने
घर दुष्यंत कुमार का
और अब तैयारी है
संग्रहालय भी ढहाने की।

स्मार्ट सिटी की धुंध में
दुष्यंत की स्मृतियाँ
हो जायेंगी धूमिल
बचेंगे सिर्फ़
मन्दिर, मस्ज़िद और चर्च
किंतु नहीं बचेंगी स्मृतियाँ
देश को साहित्य की नहीं
इबादतगाहों की ज़रूरत है
साहित्य
सरकारें नहीं बना सकता न!

आत्मविश्वास

अंकुश्री
8, प्रेस कॉलोनी,
सिदरौल, नामकुम,
रांची–834010
मो0 8809972549

सुबह–सुबह मैं दरवाजे पर बैठा ब्रश कर रहा था। तभी एक लड़की मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। गोरा रंग, आकर्षक चेहरा, युवा उम्र। उसकी देह के कपड़े फटे–पुराने थे। मुझे अपनी ओर ताकती देख कर वह अभिवादन के लिये अपने हाथ उठा दी। उसके अभिवादन का उत्तर देकर मैंने अपना ब्रश मुंह से बाहर निकाल लिया। लड़की मेरे निकट आकर बोली, ''मैं काम की तलाश में हूं। क्या आप इसमें मेरी कोई मदद कर सकते हैं ?''

खुद बेरोजगार था। उसकी बात सुन कर मैं हतप्रभ हो गया। मैंने स्पष्ट कह दिया, ''मैं तुम्हारी सहायता करने में सक्षम नहीं हूं।'' किससे कहता फिरूंगा कि एक जवान और सुंदर मगर फटेहाल लड़की को काम दिला दीजिये।

''आप ही वह व्यक्ति हैं, जो मेरी सहायता कर सकते हैं।'' उसने आत्मविश्वासपूर्वक कहा। उसका आत्मविश्वास देख कर मैं उसके बारे में सोचने पर मजबूर हो गया। मगर बहुत सोचने के बाद भी मुझे उसके काम की कोई व्यवस्था नज़र नहीं आ रही थी। मैंने पूछा, ''मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूं ?''

''आप आसपास के लोगों को जानते होंगे, मेरे रहने की कहीं तत्कालिक व्यवस्था करवा दें।'' ब्रश करने के बाद मैं अंदर अपने रूम में गया तो वह भी मेरे पीछे–पीछे आकर कुर्सी पर बैठ गयी। काफी देर तक वह मुझसे बात करती रही। इस बीच मैंने नाश्ता किया तो उसे भी नाश्ता कराया। उसका आत्मविश्वास भरा मधुर स्वर मुझे उसके बारे में सोचने के लिये प्रेरित किये जा रहा था। मैं अपने पास–पड़ोस के परिवारों में उसके लिये बात करने भी गया। मगर कहीं बात नहीं बन पायी। दोपहर होने पर मैं भोजन की व्यवस्था में लग गया। मेरे काम में मदद के लिये वह भी रसोई में आ गयी। शाम को मैं दो–तीन जगह और उसे लेकर गया। मगर कोई उसे रखने के लिये तैयार नहीं हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि यदि इसे अपने घर में तत्काल रख लूं तो शीघ्र ही यह कोई न कोई अपनी व्यवस्था कर लेगी। उसके क्षणिक संगत ने ही मुझे इतना प्रभावित कर दिया तो भविष्य में इसकी प्रेरणा मेरे लिये अवश्य प्रभावशाली साबित हो सकती थी। मैं सोचने लगा कि उसे तत्कालिक रूप से अपने यहां रहने दूं या नहीं!

अपने यहां उसे रखने की बात सोचते ही मेरे मन में तरह–तरह के प्रश्न हिचकोले मारने लगे। उसे मेरे साथ रहते देख कर लोग क्या कहेंगे ? साथियों का व्यंग्य सुनना ही पड़ेगा, पता चलने पर घर वालों से भी डांट पड़ेगी. सभी अर्थ का अनर्थ लगायेंगे और मुझे शंकित मन से देखेंगे। लेकिन मैंने सोच लिया कि तत्काल उसे अपने यहां रख कर मैं उसकी सहायता करूंगा। मैं उसके बारे में सोच ही रहा था कि उसकी खनकती हुई आवाज सुनाई पड़ी, ''बड़े भाई !'' मैं अभी क्या–क्या सोचता कि उसने मुझे टोक दिया, ''लगता है, मेरे कारण आप उलझन में पड़ गये हैं।''

''नहीं, नहीं! ऐसी बात नहीं है।'' मैंने कहा, ''तुम्हें यहां रखने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। इसमें मुझे कोई उलझन भी नहीं है। तुम्हारे काम की जब तक कोई व्यवस्था नहीं हो जाती है, तुम मेरे यहां रह सकती हो।'' इस तरह उसे मुझे अपने यहां ठहराना पड़ा। वह मेरे यहां रहने लगी। शाम बीत चुकी थी। मैं बाजार से उसके लिये कुछ कपड़े ला दिया। उसने स्वेच्छा से चौका–बरतन और रसोई का काम अपने जिम्मे ले लिया।

सुबह नाश्ता करके मैं काम खोजने चला जाता था। कोई नौकरी नहीं मिलने तक मैं प्रूफ देखने का काम कर रहा था। घर में देखा हुआ प्रूफ सुबह प्रेस में देकर फिर अपने काम के चक्कर में इस–उस कार्यालय घूमता रहता था। उसके आ जाने के कारण खाना बनाने की मेरी चिंता खत्म हो गयी थी। प्रूफ रीडिंग के लिये मुझे अधिक समय मिलने लगा। इससे मेरी आमदनी बढ़ गयी।

दिन में जब मैं घर से बाहर रहता तो वह टेबुल पर रखी मेरी किताबें पढ़ा करती थी। वह एक मिनट का भी अपना समय बेकार नहीं करती थी। मैंने उसे भी प्रूफ रीडिंग सिखला दिया। वह बहुत लगन से अपना काम करने लगी। प्रूफ रीडिंग के काम में जल्द ही वह दक्ष हो गयी। कुछ दिनों के बाद वह मेरे साथ प्रेस भी जाने लगी। बाद में वह अकेले ही प्रेस जाने और प्रूफ रीडिंग का काम लाने लगी।

कम समय में वह बहुत प्रगति कर ली थी। मैं प्रूफ रीडिंग का काम केवल रात में करता था, मगर वह दिन–रात उसी में लगी रहती थी। इसलिये उसकी मासिक आय मुझसे भी अधिक हाने लगी। कुछ ही दिनों में उसे एक प्रेस में मैनेजर का काम मिल गया। सुबह 9 बजे से शाम 6 बजे तक उसकी ड्यूटि प्रेस में रहती थी। बाकी समय में वह अतिरिक्त काम भी कर लिया करती थी। इससे उसे अच्छी आमदनी हो जाती थी। वह अब आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो गयी थी।

रविवार का दिन था। खाने के बाद वह एक पत्रिका पढ़ रही थी। मैं भी पास में ही बैठा हुआ था। कितने दिनों से कौंधते

सवालों को उस दिन मैंने मस्तिष्क से निकाल देना चाहा। उससे पूछा, ''यहां आने से पहले तुम कहां रहती थी ?'' पहले भी मैं उसके बारे में जानने का प्रयास कर चुका था। मगर वह हमेशा मेरी बात को टाल गयी थी।

''अपने घर।'' कह कर वह मुस्कुरा दी.

''यह तो मैं समझ गया कि तुम अपने घर में रहती थी. सभी अपने घर में रहते हैं। मैं पूछ रहा हूं कि तुम्हारे साथ घर में और कौन–कौन रहते थे ?''

''मैं कौन थी, कहां से आयी थी, क्या करती थी, आदि बातों में मुझे अब कोई रुचि नहीं है। मैं कौन हूं, कहां रहती हूं और क्या करती हूं – इसमें मुझे ज्यादा विश्वास है।'' उसने इत्मीनान से कहा, ''लेकिन आप बार–बार मेरे बारे में जानने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिये आपको बता ही देती हूं, ताकि यह नहीं लगे कि आपने किसी अजनबी को घर में शरण दे दी है।'' उसने आगे बताया,

''यहां से कुछ दूर एक गांव में मैं अपने अध्यापक पिता के साथ रहती थी। बचपन में ही मैं अपनी मां से हाथ धो बैठी थी। पिता ने ही मां का भी प्यार दिया। वे मुझे अपने साथ स्कूल ले जाते थे। घर पर भी घंटों पढ़ाते रहते थे। समय के हर टुकड़े का सदुपयोग करने की पिताजी ने जो सीख मुझे दी, वह आज भी मेरी आदत है। गरीबों को क्या चाहिये ? दो जून की रोटी। वह हमें मिल रही थी। इसलिये हम अपनी गरीबी में भी खुश थे।

''जब मैं सयानी हो गयी तो पिताजी को मेरी शादी की चिंता हुई। वेतन के रुपये से घर–खर्ची में ही कठिनाई होती थी। पिताजी ने ट्यूशन करके मेरी शादी के लिये रुपये जमा करना शुरू किया। मगर गांव में ट्यूशन की दर बहुत कम थी।

''मेरी शादी की बात करने पिताजी कई जगह जा चुके थे। लेकिन अध्यापक की लड़की समझ कर रिश्ता के लिये कोई तैयार नहीं होता था। यदि कोई लड़का वाला शादी के लिये तैयार भी होता था तो लड़के के गुणों की चर्चा करने के बाद उसकी कीमत से अवगत करा दिया जाता था। लड़के की कीमत इतनी अधिक होती थी कि पिताजी उसके यहां दुबारे जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे। वर्षों तक यह सिलसिला चलता रहा।

''संयोग से पिताजी के ही एक पुराने छात्र, जो मेरे सहपाठी भी रह चुके थे, मुझसे शादी करने के लिये तैयार हो गये। वे मेरे गुणों प्रभावित थे और इसीलिये वे मेरा कद्र करते थे। इसी कारण पिताजी के कहने पर वे शादी के लिये तैयार हो गये थे। विद्यालय में लेख, वाद–विवाद, संगीत, चित्रकला आदि होने वाली अनेक प्रतियोगिताओं में हम दोनों में प्रतिस्पर्धा रहती थी। उनके पिताजी नहीं थे। इसलिये अपनी शादी की बात वे स्वयं कर रहे थे। शायद इसी कारण शादी की बात पट गयी थी और हमारी शादी हो गयी.....।''

''क्या ? तुम्हारी शादी हो चुकी है ?'' उसकी सूनी मांग की ओर निहारते हुए मैंने यह प्रश्न किया था।

''हां, मेरी मांग सूनी है।'' उसने निःसंकोच होकर कहा, ''इस सूनी मांग के बारे में ही तो मैं बता रही हूं।''

''शादी के बाद बारात विदा हुई और मैं उनके साथ अपनी ससुराल पहुंच गयी। वहां मैं एक कोठरी में दिन भर अकेली बैठी रही। उनकी प्रतीक्षा में मेरी आंखें पथरा गयी थीं। घर में कहीं कोई नहीं था। कुछ रात बीतने पर मुझे किसी ने बतलाया कि आज क्या, जिंदगी में अब उनसे कभी मुलाकात नहीं होगी। उनकी.....।''

''उन्हें क्या हो गया था ?'' उसकी जिंदगी की दर्दनाक कहानी सुन कर मैं आश्चर्यचकित रह गया।

''मुझे बाद में पता चला कि उन्हें किसी ने ज़हर दे दिया था। फिर यह भी पता चला कि ज़हर देने वाला कोई बाहरी आदमी नहीं था। बल्कि उनके चाचा ही थे। पैतृक संपत्ति हड़पने के लिये उन्होंने ऐसा किया था।''

''छीः–छीः!'' मेरे मुंह से निकल पड़ा, ''ऐसा शर्मनाक काम ?''

''हां, धन–दौलत की भूख जब जोर पकड़ती है तो वह हत्या पर उतारू हो जाती है।'' दर्द भरी आवाज में उसने आगे बताया, ''मैं अपनी ससुराल में रहना उचित नहीं समझी। दूसरे दिन ही वहां से चल पड़ी। पिताजी आर्थिक तंगी के शिकार थे ही, मेरी शादी में वे कर्जदार भी हो गये थे। इसलिये ससुराल से निकलने के बाद मैं अपने पिताजी के पास नहीं गयी। बस, सीधे शहर आ गयी, इसी शहर में। यहां आने पर कुछ दिनों तक भटकने के बाद आपसे भेंट हो गयी और आपने सहारा देकर अपने पैरों पर खड़ा होने का मुझे अवसर प्रदान किया। आप सचमुच महान हैं।''

उसकी बात सुन कर मेरी आंखें डबडबा गयीं. मगर बात खत्म करने के बाद नारी हृदय की कोमलता उसके चेहरे से दूर हो गयी और उसकी जगह पूर्ववत् दृढ़ता व्याप्त हो गयी। उसने कहा, ''काफी समय बीत चुका है। अब हम लोगों को नाश्ता करके अपने–अपने काम में लग जाना चाहिये।'' वह जल्दी–जल्दी नाश्ता परोसने लगी।

वह मेरे घर आई है

वह मेरे घर आई है
दबे पांव,
कई दिनों से आ रही थी वो,
पहचानता नहीं था उसे।
कोहरा छाया रहा कई दिन,
फिर चली सर्द हवाएं।
चाय के कप सी भाप,
बात करते में मुंह से निकलने लगी।
लान की घास पर सहमी सी धूप,
तिरछी होकर लेटी रही कई दिन।
पेड़ की गौरैया दाने को नहीं उतरी,
बाजरा फर्श पर फैला रहा।
बच्चा टोपी पहने,
पीछे हाथ किये बस्ता संभाले,
आधा दरवाजा खोलकर स्कूल सरक जाता।
रजाई से मुँह निकाले मैं चाय गुटकता।
आज धूप ने मेरे कमरे के
रौशनदान को खटखटाया।
कौन, कौन है वहां?
पिटुनिया हँस रहा था
झरबेरा का हाथ पकड़े।
लाल चंपा ने पत्ते गिरा दिये
कनेर के पीले फूल कर रहे थे मोंगरे से कनबतियां।
गुलाब शरमा शरमा कर और लाल हो रहे थे।
पीली दूब पर शबनम मुस्कुराई,
मैंने देखा मेरे घर वो आई थी।

याद फिर आई तेरी

देखो इन सूखी टहनियों को
कैसी काली, ह्रदयहीन सी ।
दुनिया की यायावरी से बिंधे मुरझाये
संवेदना शून्य मन सी
दिखती हैं।
पर दरअसल सब सूख नहीं जाता
पुष्पित होते पलाश को
इस फागुन देख मन फिर हरियाया है,
ठूँठी डालों मे दहकती उष्मा
बिखरी है कान्तार भर
हरियाली के दृश्य में सिंदूर
छिंटा है चारों ओर।
बाँझ पड़ी मन की कुठरिया से
तेरी याद का झोंका
फिर आया बाहर, मन कैसा तो हो उठा।
रंग भरे तेरी अलकों से
रंगीन रोशनी
फिर टपक रही है।
भीतर कहीं किसी टहनी पर
तेरी याद की दो केसरिया पत्तियाँ
फिर खिल आई हैं।

क्या थी कोई वजह?

सुनसान गली की उस पाटदार चटकीली धूप में
अनायास पहुंचकर
गरमियों की उस ऊमस भरी तन्हाई में
मैं तुमसे वजह जानने की कोशिश में था।
आधे बंद किवाड़ से लगी
दरवाजे से छनी धूप में आधी तुम
आधी तुम्हारी परछाई,
आधी खुली आँसुओं से लवरेज तुम्हारी आँखें।
जो तुम्हारी आँखों ने कह दिया
तुम्हारे कुछ कहने की जरूरत ही न पड़ी
पर बड़े वफादार हैं
तुम्हारे आँसू
तुम्हारी इजाजत के बगैर छलके तक नहीं।
दरवाजे के भीतर को उठते मेरे पांव
तब देहरी पर ही ठिठक गये।
मुझे तब लगा था कि
मैंने वजह जान ली है न कहने की।
पर बरसों बाद
अब भी सोचने लगता हूं
कि क्या सचमुच कोई वजह थी
तुम्हारे साथ न होने की।

डॉ० के के अग्रवाल
रिटायर्ड आई पी एस
पता ।–37 वॉलफोर्ट सिटी
रिंगरोड न० 1 भाठागांव
पोस्ट–रायपुर–492013 छ.ग.
मो– 9425212340, 7000589738

नक्कारखाने की तूती

यह शीर्षक हमारे उन विचारों के लिए है जो लगातार हमारा दम घोंटते हैं परन्तु हम उन्हें आपस में ही कह सुन कर चुपचाप बैठ जाते हैं। चुप बैठने का कारण होता हैं हमारी 'अकेला' होने की सोच! इस सोच को तड़का लगता है इस बात से कि 'सिस्टम ही ऐसा है क्या किया जा सकता है, और ऐसा सोचना पागलपन है।' हर पान की दुकान, चाय की दुकान और ट्रेन के सफर में लगातार होने वाली ये हर किसी की समस्या होती है, ये चिन्ता हर किसी की होती है। और सबसे बड़ी बात कि समस्या का हल भी वहीं होता है। ऐसी समस्या और उसका हल जो दिमाग को मथ कर रख देता हैं उनका यहां स्वागत हैं। तो फिर देर किस बात की कलम उठाईये और लिख भेजिए हमें।

जनता सब समझती है बेवकूफ न समझना

सुबह सुबह आने वाली काम वाली बाई आज काफी देर तक नहीं आई और फिर आई तो उसने बम फोड़ दिया।

''पलंग पहुंचा कर गये हैं पार्टी वाले।'' कहते हुए उसके चेहरे पर खुशी टपक नहीं रही थी बल्कि बरस रही थी। और उसकी बात सुनकर मेरी धमनी धमक रही थी। कानों का रंग लाल हो गया था। पार्टी के लोगों का ये कदम मन में टेंशन पैदा कर रहा था। ये क्या बात हुई कि समाज के कुछ लोगों को लालच (उपहार)देकर वोट अपनी ओर खींचा जा रहा है। और वहीं समाज के दूसरे वर्ग को ये लालच (उपहार) नहीं दिया जा रहा है। ऐसा करके ये अपेक्षा रखी जा रही है कि वो वर्ग चुपचाप अपने विवेक का प्रयोग करता रहे हमें क्या मतलब! क्या ये चुनाव में निष्पक्षता है ? गरीब बस्ती में रूपयों, कपड़ों, बर्तनों की बंटाई होती है एन चुनाव के पहले। लालच देकर वोट खरीदे जाते हैं। ये बात हर कोई देखता है और बताता है पर ये बात छिपा जाता है कि समाज के दूसरे वर्ग को क्या मिला ?

नौकरी पेशा वर्ग हड़ताल के माध्यम से अपनी तनखा बढ़वा लेता है। किसानों को बिजली बिल माफी, कर्जा माफी हो जाती है। अन्य वर्ग क्या बेवकूफ है जो बगैर लालच के वोट देगा ? अभी तक चल रहा है पर कब तक ? कब तक ये वर्ग वोट डझलने के एवज में दूसरों को मुफ्त में मिलते उपहार देखेगा और अपनी जेब ढीली करेगा। नौकरीपेशा वर्ग कहता है उनकी एक माह की तनखा टैक्स में कट जाती है। किसान कहता है मैं तुम्हारा पेट भरता हूं। बाकी लोग क्या टैक्स नहीं भरते हैं ? जो ईमानदारी से टैक्स भरते हैं उनके लिये चुनाव उम्मीदवार उपहार क्यों नहीं देते हैं? कब तक ये वर्ग चुनाव को नैतिक जिम्मेदारी समझ कर वोट देता रहेगा। वो क्या खेल नहीं बिगाड़ेगा ?

वर्तमान में हम समाज के सबसे जिम्मेदार व्यक्तित्व डॉक्टर से भी ईमानदारी, नैतिकता और जवाबदेही की उम्मीद नहीं रखते हैं तो फिर इतने बड़े वर्ग से किस तरह ऐसी उम्मीद! अब इस वर्ग को भी चुनाव में कुछ न कुछ चाहिए वरना वह घर में बैठा रहेगा। वैसे भी चुनाव जीत कर कोई भी पार्टी अपने वोट बेच कर सरकार में शामिल हो जाती है वोटर को क्या मिलता है ? अब सभी वोटर को कुछ न कुछ चाहिए। चाहे वह हजार का नोट ही सही।

अच्छा एक बात और, कि चुनाव के पहले अपने घोषणापत्र में किये गये वायदे पार्टी के चुनाव खर्च में क्यों शामिल नहीं किये जाते हैं ? आखिर वो वायदे पूरे करके जनता को बरगलाया ही तो जाता है। चुनाव के पहले पैसे देकर या फिर चुनाव के बाद देने का वायदा करके।

आज समाज के वर्ग को वोट बैंक बनाने की कोशिश की जा रही है। अभी तक मुसलमान को गुमराह करके वोट बैंक बना दिया गया है, उनकी जायज नाजायज मांगों को पूरा किया जाता है जबकि ठीक उसी तरह की परिस्थितियों में रहने वाले अन्य जनों को उस से मरहूम रखा जाता है। आरक्षण के माध्यम से एक वोट बैंक बना कर रखा है जो एक मुश्त उसे वोट करता है जो आरक्षण को लोकलुभावन बनाता जाता है। पहले नौकरियों में आरक्षण था जो शिक्षा, हॉस्टल, कपड़े, पुस्तकों, फीस, परीक्षा फीस में छूट, नौकरी के आवेदन में छूट, आने जाने के किराये में छूट से होकर प्रमोशन में आरक्षण तक पहुंच गया है। अब बात चल रही है प्रायवेट सेक्टर में आरक्षण की। यानी वोट बैंक के लिए कुछ भी करेगा।

नौकरीपेशावर्ग एक बड़ा वोट बैंक है। क्षेत्रीय पार्टियों के वोट बैंक हैं जो अपने जातिगत सोच के तहत वोट देते हैं। अब बचता है इनके बीच का बचा वर्ग जो व्यापारी है, मजदूर है, मेहनतकश है, छोटा–मोटा धंधा करके, ठेले लगाने वाला, प्रायवेट संस्थानों में नौकरी करने वाला आदि उनको क्या मिलता है ? उनका वोट बैंक कैसे तैयार हो जिससे कि उनको भी हक मिले धौंस दिखाने का। ये वर्ग क्या हमेशा बेवकूफों की तरह देशभक्त बनकर रहेगा ? अपना टैक्स पटाकर, महंगा सामान खरीद कर देश सेवा करेगा ? वोटबैंक को अपना खून पिलाकर मोटा करेगा ?

इस पर विचार करना अति आवश्यक है। क्योंकि जब तक सोशल मीडिया नहीं था तब तक किसी को ये जानकारी में नहीं था। पर अब तो मिनटों में खबर सब तक पहुंच जाती है। इसलिए प्रत्याशी अपनी समझदारी दिखाए और समाज के सभी वर्ग को अनुग्रहित करे, वरना वो वर्ग उसका बारह बजाने में एक पल भी न लगायेगा। भले ही वह वर्ग खुलेआम वोट बैंक नहीं है परन्तु एक वोट बैंक की ही तरह चुनाव में अपना प्रभाव डालेगा।

अगर चुनाव आयोग द्वारा इस पर समयोचित सुधार नहीं किये गये तो ये वर्ग भविष्य में वोट देने ही नहीं जायेगा। क्या करेगा वो वोट देकर, न तो उसे चुनाव के पहले कुछ मिलना है न ही चुनाव के बाद। उसके लिए, उसको केन्द्रित करके कौन योजना बनायेगा, कौन सोचेगा उसके लिए? जब कोई उसके लिए सोचने वाला नहीं होगा तो वो क्यों पागलों की तरह अपना समय वोट देकर खराब करेगा। उसकी नहीं सुनेगा कोई तो वो भी अपनी ताकत दिखायेगा और घर में बैठकर चुनाव को प्रभावित कर देगा। उसके एक साथ बैठ जाने से अच्छे अच्छों का तेल निकल जायेगा।

पर क्या ये देश और समाज के लिए उचित होगा? निजी स्वार्थ देश का बेड़ा गर्क नहीं कर देगा? समाज अराजक स्थिति में नहीं पहुंच जायेगा? इसके उदाहरण मिल ही चुके हैं। वोट बैंक अपनी मांग पूरी करवाने के लिए सरकारी सम्पतियों को नुकसान पहुंचाता है और उससे सरकार डर कर सजा भी नहीं दे पाती है।

इससे बचाव का उपाय क्या हो सकता है कभी विचार किया है आपने? इसके दो तीन उपाय है जो कारगर होंगे। मुझे मालूम है कि जनता तो तैयार है इन कठोर उपायों के लिए पर सत्ता के भूखे सियार ऐसा नहीं करने देंगे। फिर भी एक जिम्मेदारी से सोचता हूं तो पाता हूं कि इन उपायों से निश्चय ही फायदा होगा वरना देश को बेचने के कुत्सित प्रयास किये जा रहे हैं। अपनी कमीशनखोरी के लिए देश जाये भाड़ में जिसको जीना है जिन्दा रहना है वो अपनी खुद सोचेगा। खुद लड़ेगा। देश के कुछ शासकों ने साबित कर दिया कि उनके आत्मविश्वास से बहुत कुछ हो सकता है और जनता उसके लिए अपना सहयोग भी देती है। जैसे बांग्लादेश की स्थापना, देश में खुली अर्थव्यवस्था लाना, नोटबंदी, सर्जिकल स्ट्राइक, जीएसटी और पेट्रोल की बढ़ी कीमत।

देश की ज्यादातर जनता देशभक्त और जागरूक है पर उसे लगातार मिलता लालच मार्ग से विचलित कर ही देता है। और ये होता इस बात से कि उसके हक को मार कर दूसरे को सहलाया जाता है। ये बात वह सहन नहीं कर सकती। अपना त्याग करने के लिए वह तैयार बैठी है पर उसके त्याग से किसी बेईमान का मोटापा न बढ़े।

चुनाव में जो भी लालच दे और सामान बांटे उसकी उम्मीदवारी तुरंत केंसिल की जाये।

चुनाव प्रचार के लिए स्थान फिक्स हों जिससे अनावश्यक खर्च न हो। यथा पंडाल, कुर्सी, माइक आदि। बाहर से आदमी ला कर भीड़ बढ़ाने वाला रिवाज बंद किया जाय। जिसे आना है वो खुद आयेगा।

झंडा, बेनर, फ्लेक्स, पाम्पलेट सभी बंद हो। और सिर्फ टीवी पर प्रचार हो। वैसे भी जो भीड़ बन कर आते हैं वो इतने बुद्धिमान नहीं होते कि वहां भाषणों से कुछ समझ सकें। भीड़ का फण्डा है सिर्फ लोगों को भीड़ दिखा कर अपना प्रभाव दिखाना।

जो भी पार्टी का घोषणापत्र है उसमें किये वायदों में सबसीडी आधारित वायदा करने की छूट नहीं होनी चाहिए। क्योंकि सबसीडी यानी एक का पेट काट कर दूसरे का भरना होता है और रिश्वतखोरी और दो नंबर के धंधे लिए चोर रास्ता तैयार करना होता है।

घोषणापत्र में किये गये वायदों को किस तरह पूरा किया जायेगा उसकी पूरी योजना होनी चाहिए। जिससे कि पार्टी कोई भी ऐसा वायदा न करे जो भविष्य में जनता पर बोझ बने। क्योंकि सिर्फ सत्ता पाने और रूतबा दिखाने के लिए चुनाव में चुने नहीं जाते हैं बल्कि देश की व्यवस्था सुचारू रूप से चलाने के लिए चुनाव में चुनाव होता है।

लोक लुभावन वायदो की जमीनी हकीकत बताई जानी चाहिए, कि किस तरह उस योजना को जमीन पर उतारा जायेगा। हवा हवाई योजना से जनता को बेवकूफ बनाकर जीतने का मौका किसी को नहीं मिलना चाहिए।

नेताओं के ऊपर लगे आरोपों की जांच त्वरित गति से होनी चाहिए जिससे कि उनको धीमी जांच के कारण सत्ता सुख मिलता रहे और जीवन के अंत में जेल जाकर बीमारी को आधार बना कर जमानत लेकर आराम से जीयें। और झूठे आरोपों में उनका कैरियर खराब भी न हो।

चुनाव के लिए वोट केन्द्र परमानेंट बना दिये जायें। और वहां नियुक्ति भी परमानेंट हो। क्योंकि रोज किसी न किसी प्रकार के चुनाव होते ही रहते हैं। ऐसी व्यवस्था बनाई जाये जिससे खर्च कम हो।

ये सब करने के लिए जीवट व्यक्तित्व चाहिए जो कि अपने और अपनी पार्टी के फायदे–नुकसान से ज्यादा देश की जनता के लिए योजनाएं बनाये और उसे देश पर दृढ़ता से लागू करे।

किसी भी पार्टी का चुनाव चिन्ह ऐसा न हो जिसे लोग अपने पास रखते ही हों। जैसे घड़ी, झाड़ू, पेन, साइकिल, हाथ पैर, नमस्ते का चिन्ह आदि। क्योंकि हाथी और कमल को चुनाव आयोग द्वारा ढंक कर छिपाया गया था।

देश में किसी भी भवन, पुल, अस्पताल, आदि का नाम किसी भी महापुरूष पर न रखकर उस नगर, शहर के नाम पर रखा जाये। स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के नाम का दुरूपयोग न हो क्योंकि आजादी के लिए लड़ने वाले लोग पार्टी देखकर नहीं लड़े थे। उन्होंने अपने प्राण देश और जनता के लिए त्यागे थे।

याद रखें कि जनता बेवकूफ नहीं सब समझती है। वो खुद को वोट बैंक बनाना अच्छी तरह से जानती है।

''बस्तर पाति'' मात्र पत्रिका प्रकाशन ही नहीं है बल्कि इस क्षेत्र का साहित्यिक दस्तावेज है। हम और आप मिलकर तैयार करेंगे एक नई पीढ़ी; जो इस क्षेत्र का साहित्यिक भविष्य बनेगी। मिलजुलकर किया प्रयास सफल होगा ऐसा विश्वास है। हमें करना यह है कि लोगों के बीच जायें उनके बीच साहित्यिक रूचि रखने वाले को पहचाने और फिर लगातार संपर्क से उन्हें लिखने को प्रेरित करें। उनके लिखे को प्रकाशित करना ***''बस्तर पाति''*** का वादा है।

रचनाशील समाज रचनात्मक सोच से ही बनता हैं, ये सच लोगों तक पहुंचाने के अलावा रचनाशील बनाना भी हमारा ही कर्तव्य है। लोक संस्कृति के अनछुए पहलूओं के अलावा जाने पहचाने हिस्से भी समाज के सम्मुख आने ही चाहिये। आज की आपाधापी वाली जिन्दगी में मानव बने रहने के लिए मिट्टी से जुड़ाव आवश्यक है। खेत–किसान, तीज–त्यौहार, गीत–नाटक, कला–संगीत, हवा–पानी आदि के अलावा घर–द्वार, माता–पिता से निस्वार्थ जुड़ाव की जरूरत को जानते बूझते अनदेखा करना, अपने पांवों कुल्हाड़ी मारना है, इसलिए हमारी सोच के साथ जीवन में भी साहित्य का उतरना नितांत आवश्यक है। साहित्य मात्र कुछ ही पढ़े–लिखे लोगों की बपौती नहीं है बल्कि लोक की सम्पदा है इसलिए सभी गरीब–अमीर, पढ़े–लिखे लोगों को जोड़ने की बात है। कला की प्रत्येक विधा हमें मानव जीवन सहेजने की शिक्षा देती है। हां, ये अलग बात है कि हम उसे समझना चाहते हैं या फिर समझाना नहीं चाहते हैं। लोक जीवन, लोक संस्कृति और लोक साहित्य, इन सभी में एक ही विषय समाहित है, एक ही आत्मा विराजमान है, इसलिए किसी एक पर बात करना ही हमें मिट्टी से जोड़ देता है, हमें मानव बने रहने पर मजबूर कर देता है।

मेरा निवेदन है कि हम अपने क्षेत्र के लोगों को ***''बस्तर पाति''*** से जोड़ें और उन्हें अपनी रचनात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करें। ***''बस्तर पाति''*** के पंचवर्षीय सदस्य बनकर इस साहित्यिक आंदोलन के सक्रिय सहयोगी बनें। ***''बस्तर पाति''*** को मजबूत बनाने के लिए आर्थिक आधार का मजबूत होना आवश्यक है। इस छोटी–सी किरण को सूरज बनना है और आप से ही संभव है, इसलिए रचनात्मक सहयोग के साथ ही साथ आर्थिक सहयोग प्रदान करते हुए आज ही पंचवर्षीय सदस्य बनें। अपने मित्रों को जन्मदिन और सालगिरह पर उपहार स्वरूप पंचवर्षीय सदस्यता दें। याद रखें, ज्ञान से बड़ा उपहार हो ही नहीं सकता है।

फार्म–4

प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा 19 डी के अंतर्गत अपेक्षित 'बस्तर पाति' नामक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरणः–

1. प्रकाशन का स्थान–	:	सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
2. प्रकाशन की आवर्तता–	:	त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम–	:	सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	:	हां
4. पता–	:	सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
5. प्रकाशक का नाम–	:	सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	:	हां
5. सम्पादक का नाम–	:	सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	:	हां
पता–	:	सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
6. उन व्यक्तियों के नाम और पते, जो पत्रिका के मालिक और कुलप्रदत्त पूंजी के एक–एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार या भागीदार हैं–	:	सनत कुमार जैन, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.

निवेदन अपने पाठकों और लेखकों से–

आपसे निवेदन है कि आपकी अपनी लोकप्रिय पत्रिका बस्तर पाति के लिए अपनी मौलिक कहानी, समसामायिक और जनसमस्याओं पर आधारित, सामाजिक, साहित्यिक आलेख भेजें। वर्तमान में कविताओं और लघुकथाओं का ढेर लग चुका है। अगले अंक हेतु अपनी कहानी एव आलेख ही भेजें।

संपादक बस्तर पाति

कविता का रूप कैसे बदलता है देखें जरा। नये रचनाकार ने लिखा था, नवीन प्रयास था इसलिए कसौटी पर खरा नहीं उतरा। उसी कविता को कैसे कसौटी पर खरा उतारें–

चुनाव

हर कोई तो स्वतंत्र है यहां चुनाव करने को
सूरज भी और चंदा भी
हवा भी और पानी भी
धूल और मिट्टी भी
नदी और समुंदर भी,
बस्स् एक मानव ही नहीं है
उसको ही नहीं है
वह एक लाचार है
उसे घर मिल ही जाये
रोटी मिल जाये
साफ पानी ही पी ले
कमर सीधी कर ले
या फिर टिककर खड़ा ही हो जाये।
फलों का स्वाद ले ले,
वो गरीब इंसान एकदम लाचार है
ये सब सोच सोच कर बीमार है
एकदम बीमार!

यही कविता कुछ अन्य पंक्तियां जोड़ने पर देखें कैसे रूप बदलकर रोमांचित करती है–

चुनाव

हर कोई तो स्वतंत्र है यहां चुनाव करने को
सूरज भी और चंदा भी
हवा भी और पानी भी
धूल और मिट्टी भी
नदी और समुंदर भी,
बस्स् एक मानव ही नहीं है
उसको ही नहीं है
वह एक लाचार है
उसे घर मिल ही जाये
रोटी मिल जाये
साफ पानी ही पी ले
कमर सीधी कर ले
या फिर टिककर खड़ा ही हो जाये।
फलों का स्वाद ले ले,
वो गरीब इंसान एकदम लाचार है
ये सब सोच सोच कर बीमार है
एकदम बीमार!

यही असंतोष उसे आगे बढ़ाता है और गिराता भी है।

ले के मुहब्बत का नाम,
लोग कोसते हैं "सुनील" को,
मशवरा भी दिया था तजुर्बेकार नामुकम्मल आशिकों ने,
वो बेवफा हकीकत में मिटा देगी "अकेला" को,,,,,,,,

"सुनील" ने तो मुहब्बत की,
सिर्फ एक बूँद रोशनी की किरण ही माँगी थी,
तुमने तो ऐ सनम "अकेला" के इश्क़ में,
तबाही की आग ही लगा डाली,,,,,,,,

यकीनन नामुकम्मल आशिक की मौत को,
ये दुनिया भुला ही देती है ऐ "सुनील",
सनम ने तो रिवाज ही बदल डाला,
"अकेला" को जीते जी भूला कर,,,,,,,

दोस्तों, "सुनील" के इश्क़ का जख्म बातों से नहीं भर सकता,
मुहब्बत का फूल पत्थर पे खिल नहीं सकता,
जो अपनी फ़ितरत में कमजर्फ बेवफ़ाई है रखती,
वो "अकेला" को चाहत से हरगिज़ नहीं मिल सकती,,

सजी थी तेरे मासूम चेहरे के पीछे,
ऐ सनम तेरी खुदगर्ज बेवफ़ाई भी,
"सुनील" तो आशिक पागल ही था,
खुद तो डूबा ही "अकेला" को भी तबाह किया,,,,,

तू वो शख्स बनी ही नहीं थी ऐ सनम,
जो "सुनील" के इश्क़ के काबिल होती,
वो तो "अकेला" को गुनाह ए मुहब्बत की सजा मिलनी थी,
जो तुझ जैसे को चाहत का खुदा मान लिया,,,,,

कर गई वो इस कदर सरेआम बेवफ़ाई,
कि नाजुक मुहब्बत भी बदनाम हो गई,
"सुनील" से कुछ नहीं माँगा कीमत अपनी खुदगर्जी की,
बस "अकेला" को जीते जी इश्क़ के नाम नीलाम कर गई,,,,,,,

श्री सुनील दास की फेसबुक वॉल से

बस्तर पाति को मूर्तरूप देने वाले सहयोगी

संस्थापक सदस्यः–

श्री एम.एन.सिन्हा, दल्ली राजहरा छ.ग.
श्री आशीष राय, जगदलपुर, छ.ग.
श्री अमित नामदेव, रायपुर, छ.ग.
श्री गौतम बोथरा, रायपुर, छ.ग.
श्री कमलेश दिल्लीवार, रायपुर, छ.ग.
श्री सुनील अग्रवाल, कोरबा, छ.ग.
श्री संजय जैन, भाटापारा, छ.ग.
श्रीमती ममता जैन, जगदलपुर, छ.ग.
श्री सनत जैन, जगदलपुर, छ.ग.

परम सहयोगीः–

श्रीमती उषा अग्रवाल, नागपुर
श्री महेन्द्र जैन, कोण्डागांव
श्री आनंद जी. सिंह, दंतेवाड़ा
श्री विमल तिवारी, जगदलपुर
श्री उमेश पानीग्राही, जगदलपुर

सदस्यः–श्रीमती जयश्री जैन, श्रीमती रचना जैन, शमीम बहार, मनीष अग्रवाल जगदलपुर, श्याम नारायण श्रीवास्तव रायगढ़, श्रीमती अशलेषा झा, नलिन श्रीवास्तव राजनादगाव, ऋषि शर्मा 'ऋषि', बीरेन्द्र कुमार मौर्य जगदलपुर, टी आर साहू दुर्ग, श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे जगदलपुर, श्रीमती बरखा भाटिया कोण्डागांव, निर्मल आनंद कोमा, राजिम, कांति अरोरा बिलासपुर, राजेन्द्र जैन भिलाई, मिश्रा जी, नूर जगदलपुरी जगदलपुर, हरेन्द्र यादव कोण्डागांव, महेन्द्र यदु कोण्डागांव, एस.पी.विश्वकर्मा कोण्डागांव, सुश्री उर्मिला आचार्य जगदलपुर, श्रीमती प्रभाती मिंज बिलासपुर, श्रीमती सोनिका कवि, जितेन्द्र भदोरिया जगदलपुर, आर.बी. तिवारी महासमुंद, मे. होटल रेनबो जगदलपुर, संजय मिश्रा रायपुर, इश्तियाक मीर जगदलपुर, सोनिया कुशवाह, श्रीमती पूर्णिमा सरोज रूपाली सेठिया, राजेश श्रीवास्तव, महेन्द्र सिंह ठाकुर, चंद्रशेखर कच्छ, में.पदमावती किराना स्टोर्स, दिलिप देव, तृप्ति परिडा, धरमचंद्र शर्मा, हेमंत बघेल जगदलपुर जी.एस. वरखड़े जबलपुर, लक्ष्मी कुडीकल जगदलपुर, अनिल कुमार जयसवाल भिलाई, वीरभान साहू रायपुर, प्रीतम कौर, मनीष महान्ती, प्रणव बनर्जी, शेफालीबाला पीटर, यशवर्धन यशोदा, शरदचंद्र गौड़, सुरेश विश्वकर्मा श्रीमती शांती तिवारी, विनित अग्रवाल, एन.आर. नायडू, श्रीमती मोहिनी ठाकुर, जयचंद जैन, कुमार प्रवीण सूर्यवंशी, भरत गंगादित्य, मिनेष कुमार जगदलपुर, शिव शंकर कुटारे नाराणपुर, सुशील कुमार दत्ता जगदलपुर, अखिल रायजादा बिलासपुर, श्रीमती दंतेश्वरी राव कोण्डागांव, पी. विश्वनाथ जगदलपुर, श्रीमती रजनी साहू मुबई, श्रीमती वंदना सहाय नागपुर, श्रीमती माधुरी राउलकर नागपुर, श्रीमती रीमा चढ्ढा नागपुर, अरविन्द अवस्थी मिर्जापुर, देव भंडारी दार्जीलिंग, जगदीशचंद्र शर्मा घोड़ाखाल नैनीताल, श्रीमती विभा रश्मि जयपुर, नुपूर शर्मा भोपाल, मो.जिलानी चंद्रपुर, डॉ.अशफॉक अहमद नागपुर, रमेश यादव मुंबई श्रीमती सुमन शेखर ठाकुरद्वारा, पालमपुर हि.प्र., श्रीमती प्रीति प्रवीण खरे भोपाल, डॉ. सूरज प्रकाश अष्ठाना भोपाल, डी.पी.सिंह रायपुर, प्राचार्य दंतेश्वरी महाविद्यालय दंतेवाडा, रोशन वर्मा कांकेर, मनोज गुप्ता रायपुर, श्रीमती कमलेश चौरसिया नागपुर, डॉ. कौशलेन्द्र जगदलपुर, पूनम विश्वकर्मा बीजापुर, अमृत कुमार पोर्ते, जगदलपुर, अविनाश ब्यौहार जबलपुर, धनेश यादव, नारायणपुर, कृष्णचंद्र महादेविया, केशरीलाल वर्मा, बचेली, संदीप सेठिया तोकापाल, श्रीमती हितप्रीता ठाकुर, परचनपाल, गोपाल पोयाम, पंण्डरीपानी, श्रीमती खुदेजा खान, जगदलपुर, श्रीमती वीना जमुआर पूना, श्रीमती रजनी त्रिवेदी, जगदलपुर श्रीमती मेहरून्निसा परवेज़, भोपाल, धरणीधर, डिमरापाल, चंद्रकांति देवांगन, जगदलपुर, श्रीमती तनुश्री महांती जगदलपुर, चंद्रमोहन किस्कू झारखण्ड, डॉ उषा शुक्ला जगदलपुर, चमेली कुर्रे जगदलपुर, क्षत्रसाल साहू दुर्गापुर, गौतम कुमार कुण्डू जगदलपुर, रीना जैन जगदलपुर, अलका पाण्डे भानपुरी, प्रहलाद श्रीमाली, चेन्नई मिथिलेश अवस्थी नागपुर, उमेश मण्डावी कोण्डागांव, त्रिलोक महावर अम्बिकापुर, पूर्णिमा विश्वकर्मा, नासिक,बालकृष्ण गुरू खैरागढ़, डॉ धुंडीराज, कोल्हापुर, पृथ्वीराज टाटिया जगदलपुर, संदीप नगराले पुणे, लक्ष्मीसिंह जगदलपुर, रमेश जैन राही डोंगरगांव

बस्तर पाति का कवर पेज श्री नरसिंह महान्ती

श्री नरसिंह महान्ती बस्तर क्षेत्र के वो कलाकार हैं जो नाम से दूर चुपचाप अपना सृजन कर रहे हैं।

इनका सृजन बस्तर के जनजीवन के साथ ही साथ बस्तर का प्राकृतिक सौन्दर्य भी समेटे हुये है। अपनी तुलिका से कुछ ही पलों में सौन्दर्य गढ़ लेते हैं। किसी भी दृश्य की बारीक से बारीक विशेषता इनकी दृष्टि से बची नहीं रह पाती है। मुख्यतः वाटर कलर के उपयोग से जीवंत दृश्य उकेरने वाले महान्तीजी पानी के दृश्य यूं उभारते हैं कि समझना मुश्किल हो जाता है कि पानी का चित्र है अथवा पानी ही है। पेन्सिल के प्रयोग से ब्लैक एण्ड व्हाइट रेखाओं द्वारा बनाये चित्रों की छटा देखते ही बनती है। इनके बनाये चित्रों की प्रदर्शनी 'आकृति' में लग चुकी है और ***बस्तर पाति*** परिवार पुनः प्रदर्शनी लगाने पर विचार कर रहा है जिससे कि जल्द ही शहर के लोगों को उनका छिपा खजाना देखने को मिले।

बस्तर पाति के बैक कवर पेज के फोटोग्राफर–श्री शैलेष यादव

श्री शैलेष यादव जी एक विचित्र फोटोग्राफर हैं। वे कब किसकी फोटो खींच खांच कर रख लेते हैं पता ही नहीं चलता। वे सबसे पहले चित्र लेने के लिए मानसिकता मन ही मन में बना लेते हैं सारी तैयार कर लेते हैं उसके बाद केमरा उनका चमकता है।

वो केमरा एक यादगार तस्वीर तैयार कर हमारी नजरों में दमकने के लिए छोड़ जाता है। हम सोच में पड़ जाते हैं कि वही दृश्य हमने भी देखा था पर हमें वो इस तरह क्यों नहीं दिखा। शांत स्वभाव के धनी, मिलने जुलने में विश्वास नहीं रखते, चुपचाप अपनी शौक को पूरा करते हैं। शैलेष भाई जब तब फोटो खींच कर मेल करते रहते हैं। उनके प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्र लाजवाब होते हैं।

उंगलबाज– सरकारी रिश्वत

''नमस्कार! मैं गोपी, दूरदर्शन.....से।''

''ज..जी नमस्कार!'' हड़बड़ाहट साफ समझ आ रही थी।

''कैसी हैं आप ?''

''ज..जी, ठीक हूं।''

''आपको आना है, इसलिए बुला रहा हूं। सिर्फ आपके लिए ही एक प्रोग्राम बनाया है दूरदर्शन में प्रसारण के लिए। खूबसूरत लोगों के लिए खूबसूरत प्रोग्राम!'' आवाज में आत्मविश्वास के साथ और कुछ भी था जो शहद की तरह टपक रहा था।

''ज...जी, जरूर। किस दिन है प्रोगाम?''

''जी जब आप आ जायें....मतलब जिस दिन आपको फुर्सत मिल जाये...तब रिकार्डिंग कर लेंगे. ..एक कप चाय भी आपके साथ पी लेंगे।''

''ज...जी, जरूर। अच्छा मैं रखती हूं।''

गोपी अपने ऑफीस की दीवार पर अदृश्य दृश्य तैयार करता हुआ एक घिनौनी हंसी हंस रहा था और उसके मोबाइल पर एक व्हाट्सएप्प ग्रुप की सुंदर सी महिला की डीपी पर लगी तस्वीर उसे मुस्कुराकर देख रही थी।

''मेहनताना भी दूंगा और फेम भी,.....
.....आखिर चाय से ही तो नजरों में उतरोगी।''